पुस्तक संस्कृति

साहित्य एवं संस्कृति की त्रैमासिकी
वर्ष-2; अंक-2; अप्रैल-जून, 2017

प्रधान संपादक
बल्देव भाई शर्मा

संपादक
पंकज चतुर्वेदी

परामर्श
राजीव रंजन गिरि

संपादकीय सहयोग
दीपक कुमार गुप्ता

विज्ञापन एवं प्रसार
कंचन वांचु शर्मा
नरेन्द्र कुमार

उत्पादन
तरुण दवे, अनुज भारती

रेखाचित्र
फजरुद्दीन

सज्जा/डिजाइन
ऋतुराज शर्मा

शब्द संयोजन/कार्यालयीन सहयोग
सुभाष चंद्र, प्रवीन कुमार

सदस्यता शुल्क–
व्यक्तियों के लिए
एक प्रति : ₹ 35.00
वार्षिक : ₹ 125.00
(शुल्क भारत के लिए मान्य)

संपादकीय पत्र व्यवहार
संपादक
पुस्तक संस्कृति
राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत
पता : नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया
फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070.
फोन : 011-26707761
ई-मेलः editorpustaksanskriti@gmail.com

प्रकाशक व मुद्रक सतीश कुमार द्वारा
नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया (राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत) नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070 के लिए प्रकाशित और रेक्मो प्रेस प्रा. लि., ओखला, नई दिल्ली से मुद्रित।

संपादक : पंकज चतुर्वेदी

सर्वाधिकार सुरक्षित :
प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक और प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। प्रकाशित रचनाओं के विचार से प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल दिल्ली न्यायालय के अधीन होंगे।

इस अंक में

संपादकीय — *बल्देव भाई शर्मा* — 2

पाठकीय प्रतिक्रिया — 3

आलेख — **'गंगा : कितनी निर्मल–कितनी अविरल?'** *–राधाकांत भारती* — 4

कहानी — **सुगंध कागज के फूल की** *–भगवान अटलानी* — 9

साक्षात्कार — **प्रकाश जावड़ेकर** *–रोहित कुमार* — 13

लेख — **हिंदी को समर्पित : नलिनी मोहन सान्याल** *–राजेन्द्र परदेसी* — 15

लेख — **प्रेम और शांति के विविध आयाम** *–डॉ. स्वदेश भारती* — 17

कहानी — **दूसरा राजमहर्षि**–*अरुण अर्णव खरे* — 21

कविताएँ — **अपना घर, आज, सीमाएँ, केवल मैं, उन्होंने कहा, आवाज़, चादर** *–रामदरश मिश्र* — 24

कविताएँ — **वह घर, परिंदा, वक्त आ गया** *–नरेन्द्र मोहन* — 25

कविताएँ — **दुःखों का पेड़, दे दो वक्त जरा-सा...** *–अनिला राखेचा* — 26

साक्षात्कार — **डॉ. सुरेन्द्र बिहारी गोस्वामी** *–सुदर्शन कुमार सोनी* — 27

कहानी — **मुलम्मा** *–मृदुला श्रीवास्तव* — 30

आलेख — **करमा नृत्य : धड़कता है आदिवासी समाज का दिल** *–संगीता सेठी* — 33

कहानी — **वृत्त के कोण** *–नंदकिशोर बर्वे* — 36

पुस्तक समीक्षा — 39

पुस्तकें मिलीं — 57

साहित्यिक गतिविधियाँ — 59

आध्यात्मिक चेतना का आधार बने शिक्षा

लंदन में श्रीमती अरुणा सभरवाल रहती हैं, यहाँ प्रवासी भारतीय लेखकों व साहित्यकारों के साथ एक संगोष्ठी में उनसे मिलना हुआ। करीब 35 वर्ष पहले वे शादी के बाद दिल्ली से यहाँ आईं क्योंकि उनके पति लंदन में कार्यरत थे। उन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय से बीए ऑनर्स तक पढ़ाई की थी, सो उनको लगा कि घर में बैठने से अच्छा है कुछ काम किया जाए। उन्होंने अध्यापिका बनना चाहा, लेकिन यहाँ उनकी पढ़ाई को ज्यों का त्यों स्वीकार नहीं किया गया और कहा गया कि आपको यहाँ की बीए की डिग्री लेनी होगी। उन्होंने फिर पढ़ाई करके बीए किया, एमए किया और 31 साल पहले प्राइमरी विद्यालय में उन्हें अध्यापक की नौकरी मिली अब सेवानिवृत्त हैं, लेकिन सात-आठ वर्षों से कहानीकार भी हैं। यह बात कचोटने वाली है कि भारत की शैक्षणिक उपलब्धियाँ इन यूरोपीय देशों में कमत्तर क्यों आँकी जाती हैं? हमारे देश की शैक्षणिक छवि इतनी धुंधली क्यों है? भारत में अपने शिक्षाविद् इस बात पर क्षोभ व्यक्त करते हैं कि आज भी दुनिया के 200 श्रेष्ठ शैक्षणिक संस्थानों में भारत की भागीदारी नहीं दिखती।

इंग्लैंड के ऑक्सफोर्ड व कैंब्रिज विश्वविद्यालय हों या अमेरिका का हॉर्वर्ड विश्वविद्यालय अथवा दूसरे कई देशों के कुछ उच्च शिक्षा संस्थान इनका डंका दुनियाभर में बजता है। लेकिन जिस भारत को कहा जाता है कि कभी ज्ञान के क्षेत्र में विश्व गुरु रहा, जहाँ नालन्दा, तक्षशिला और विक्रमशिला जैसे विश्व प्रसिद्ध शिक्षा संस्थान रहें, जिनकी प्रशंसा और गुणवत्ता की चर्चा कई विदेशी विद्वानों, जिन्होंने वहाँ शिक्षा प्राप्त की, के उल्लेखों में मिलती है, आजादी के बाद शिक्षा के क्षेत्र में हम क्यों इतना पिछड़ गए कि आज हमारी डिग्रियों की गुणवत्ता विश्वसनीय नहीं रही। भारत के लाखों विद्यार्थियों को भी क्यों लगता है कि वे विदेशी विश्वविद्यालयों में पढ़ाई करके डिग्री लेंगे तो उन्हें ज्यादा नाम-दाम मिलेगा। इन सारे चिंताजनक परिदृश्य में एक बात तो साफ है कि आजादी के बाद हमारे यहाँ शिक्षा विशेषकर उसकी गुणवत्ता को प्राथमिकता पर नहीं रखा गया। इसके अनेक उल्लेख मिलते हैं कि भारत में पराधीनता खासकर अंग्रेजी शासन से पहले हमारी शिक्षा व्यवस्था विशेषकर गुरुकुल प्रणाली बहुत समृद्ध थी। अधिकांश गाँवों तक यह पूर्ण गुणवत्तायुक्त व्यवस्था उपलब्ध थी। लॉर्ड मैकाले तक ने इसे स्वीकार किया है।

कालांतर में विदेशी शासकों ने इसे छिन्न-विछिन्न कर हमारे विश्वविद्यालायों, उनके पुस्तकालयों को जला डाला। मैकाले ने तो बड़ी चतुराई हमारी संपूर्ण शिक्षा व्यवस्था का अंग्रेजीकरण कर डाला ताकि भारत का ज्ञान-विज्ञान जो दुनिया में इस देश को श्रेष्ठ बनाए रहा विशेषकर इसका मूल स्रोत संस्कृत भाषा, सब अप्रासंगिक हो जाएँ। अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली से भारतीयों में 'स्व' के प्रति आत्महीनता का बोध पैदा हो और वे भारतीय देह में अंग्रेजी औपनिवेशिक मानसिकता से ग्रस्त होते चले जाएँ। मैकाले का यह षड्यंत्र भारत में बड़े पैमाने पर पढ़े-लिखे लोगों को औपनिवेशिक मानसिक गुलामी से ग्रस्त काले अंग्रेज बनाने में सफल रहा। देश की स्वाधीनता के बाद भी शिक्षा के इस दोष को खत्म करने की बजाए आधुनिक तरक्की के नाम पर पाला-पोसा गया, नतीजा यह है कि हम जो थे वे तो रहे ही नहीं, जो बनाने का प्रयास किया गया वह बन नहीं पाए। विरोधाभास देखिए कि जिन अंग्रेजों ने भारत में अपने शासन के दौरान भारतीयों के मन में देश के साहित्य, ज्ञान, महापुरुषों, जीवन मूल्यों, इतिहास आदि के बारे में घृणित प्रचार कर हिकारत का भाव भर दिया, वहीं अपने इतिहास को वे भविष्य संवारने का माध्यम घोषित करते हैं। लंदन में भारतीय उच्चायुक्त से मिलने जाते हुए रास्ते में यहाँ के विख्यात 'नेशनल हिस्ट्री म्यूजियम' की विशाल और शानदार इमारत पर मेरी नजर पड़ी। मैंने देखा कि वहाँ एक ध्येय वाक्य (मोटो) लिखा है–'ए नेचुरल हिस्ट्री म्यूजियम फॉर फ्यूचर'।

कैसा आश्चर्य है कि भारतीयों के जिस गौरवशाली अतीत को भुलाने के लिए जिन अंग्रेजों ने अनेक प्रपंच किए, छल-बल सब अपनाया, आज भी उनकी दुंदुभी बजाने वाले औपनिवेशिक मानसिकता के शिकार कई भारतीय कहीं हमारे देशभक्त क्रांतिकारियों को 'रिवोल्यूशनरी टेरेरिस्ट' लिखते हैं, तो कोई कुख्यात अंडमान की सेलुलर जेल से क्रांतिवीर सावरकर की नाम पट्टिका हटवा देता है, तो कोई स्वनामधन्य इतिहासकार होने के दंभ में 'लोग आते गए-कारवाँ बनता गया' की तर्ज पर भारत की मूल पहचान नष्ट करते हुए इसे 'माइग्रेट कंट्री' सिद्ध करने पर तुला है। वहीं अंग्रेज अपने इतिहास को भविष्य निर्माण का मंत्र बताने की घोषणा कर रहे हैं ताकि उनकी भावी पीढ़ियाँ जान सकें कि उनके देश का इतिहास कितना श्रेष्ठ था। कितने लोग इस पर गर्व करते हैं कि लंदन में आज जिस 'इंडिया हाउस' में भारतीय उच्चायुक्त का विशाल दफ्तर है, वह कभी भारत के स्वाधीनता आंदोलन और क्रांतिकारी गतिविधियों का केंद्र रहा? इतिहास की अवमानना कर कोई समाज या देश दुनिया में आगे नहीं बढ़ सकता। दुर्भाग्य है कि शिक्षा हो या हमारी संस्कृति, सबको हिकारत की नजर से देखने का नजरिया बना दिया गया। फिर दुनिया भी हमारा मान क्यों करेगी? भारत में जिस ज्ञान और शिक्षा के माध्यम से हमारी आध्यात्मिक चेतना परवान चढ़ी, उसे हमें भले ही हिकारत से देखने की आदत पड़ गई हो लेकिन उससे प्रेरित होकर हॉलीवुड की प्रख्यात अभिनेत्री जूलिया रॉबर्ट गुड़गांव के पास एक आश्रम में उसकी दीक्षा ले लेती हैं और बेल्जियम से भारत में धर्म प्रचार करने आए ईसाई पादरी फादर कामिल बुल्के राम भक्त होकर रामचरित मानस का अध्ययन-शोध करने में जुट जाते हैं। ऐसे अनेक उदाहरण हैं। चीन के प्रो. चिन दिंगहान और रूसी विद्वान वारान्निकोव अपने देश में अपनी भाषाओं में रामचरितमानस का अनुवाद इसलिए करते हैं ताकि उनके देशवासी रामचरितमानस में वर्णित श्रेष्ठ जीवन मूल्यों, अध्यात्म और धर्म यानी नैतिकता की शिक्षा प्राप्त कर सकें। शिक्षा केवल साक्षरता नहीं है। विवेकानंद ने कहा है कि शिक्षा तो व्यक्ति के देवत्व यानी गुण संपदा को प्रकट करने का माध्यम है। जिन गुरु रामकृष्ण परमहंस ने एक साधारण से युवक नरेंद्र को विवेकानंद बना दिया, वे स्वयं तो साक्षर भी नहीं थे, लेकिन उनकी आध्यात्मिक चेतना शिक्षा के कई पायदानों को पार कर शीर्ष पर प्रतिष्ठित हो गई। भारत का अध्यात्म व्यक्ति की दिव्यता और गुणवत्ता को प्रकट व सशक्त करने का मार्ग है जो उदात्त जीवन मूल्यों का सृजन करता है। भारत का अध्यात्म तो हमारे अतीत की सबसे समृद्ध पूंजी है जो मानवीय चेतना और मानवीय गुणों का विस्तार करता है। इसलिए शिक्षा को आध्यात्मिक चेतना का आधार बनाया जाना चाहिए तभी विश्व में उसको प्रतिष्ठा मिलेगी।

(बल्देव भाई शर्मा)

प्रधान संपादक, पुस्तक संस्कृति

पाठकीय प्रतिक्रिया

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास 'साहित्य-संस्कृति के संरक्षण-संवर्धन के लिए इतना कुछ कर रहा है कि हमें इसका उपकार मानना चाहिए और यथासाध्य-यथोचित सहयोग करना चाहिए। वे अल्पमोली अमूल्य पुस्तकें छापते हैं, पुस्तक मेले का आयोजन करते हैं, देश ही नहीं, विदेश में भी और पाठकीय रुचि को जगाए रखने के लिए तरह-तरह की पत्रिकाएँ प्रकाशित करते रहते हैं।

थोड़े समय पहले राँची में ऐसे ही पुस्तक मेले में 'पुस्तक संस्कृति' की एक प्रति उपलब्ध हुई (वर्ष-1, अंक 4) किंतु किताबों के बीच पड़ी रह गई और मैं विकल था कि कुछ रोचक-ज्ञानवर्धक सामग्री पढ़ने को मिले। होता है ऐसा—गोद में लड़का, नगर में ढिंढ़ोरा! अचानक 'पुस्तक संस्कृति' का वह अंक प्रकट हो गया। पढ़ना शुरू किया तो पढ़ता ही चला गया। रोचक कहानियाँ, प्रेरक लेख, भूटान की यात्रा का विवरण, लघुकथा, पुस्तक-समीक्षाएँ (नितांत पठनीय), न्यास से संबंधित समाचार और साहित्यिक गतिविधियों की जानकारी! किसी भी साहित्यिक पत्रिका से और क्या चाहिए! पश्चिम बंगाल के माननीय राज्यपाल महोदय का परामर्श ठीक है, एक-आध किशोरोपयोगी सामग्री (विज्ञान-कथा आदि) दे सकें तो निश्चित ही बेहतर हो।

इतनी पठनीय पत्रिका का प्रकाशन शुरू करने के लिए बधाई देना तो बनता है। अगले अंक की प्रतीक्षा रहेगी।

—अशोक प्रियदर्शी
हरमू हाउसिंग कॉलोनी, राँची

साहित्य की विभिन्न विधाओं से सजा 'पुस्तक संस्कृति' का जनवरी-मार्च-2017 का अंक पढ़कर बहुत अच्छा लगा। पत्रिकाओं की भीड़ में राष्ट्रीय पुस्तक न्यास की यह पत्रिका अपनी विशेष पहचान इसलिए भी बनाती है कि इसमें शामिल रचनाओं को अत्यंत गरिमा के साथ प्रस्तुत किया जाता है जिससे संबंधित लेखक स्वयं को गौरवान्वित अनुभव करता है।

संपादकीय लेख 'भाषाओं के बीच सेतु है अनुवाद' निश्चित रूप से एक ज्वलंत प्रश्न को समेटे हुए है। वास्तव में अनुवाद का कार्य बेहद चुनौती का कार्य होता है। यह भाषाओं के बीच सेतु तभी बन पाता है जब एक भाषा में रची गई रचना की आत्मा उसी अंदाज में दूसरी भाषा में बात करे। पत्रिका में प्रकाशित लेख पाठकों के लिए व्यापक जानकारी उपलब्ध कराते हैं। निजार कब्बानी तथा दिविक रमेश की कविताएँ अच्छी लगीं। कहानी 'शादीवाली रात' का रंग देखते ही बनता है। हाँ, लघुकथा को लेकर एक प्रश्न जरूर मन में उठता है कि इन दिनों बहुत-से लेखक लंबी-लंबी लघुकथाएँ लिख रहे हैं जिससे लघुकथा का वास्तविक रूपरंग धुँधला-सा होता जा रहा है। कहानी और लघुकथा के बीच का फर्क तो लेखक को रखना ही होगा। हमेशा की तरह पुस्तक समीक्षा तथा साहित्यिक गतिविधियों की जानकारी पाकर पत्रिका पढ़ने की लालसा बनी रहती है।

—अशोक वर्मा
110, लाजवंती गार्डन, न.दि.-46

यह पत्रिका निरंतर ऊँचाई की ओर बढ़ रही है। जनवरी-मार्च-2017 अंक यद्यपि अनुवाद पर केंद्रित है, लेकिन पूरा अंक शोध विशेषांक बन गया है। 'अनुवाद विभिन्न भाषाओं में सेतु का काम करता है' प्रधान संपादक जी का यह कथन पूर्णतया समीचीन है। भारत में अनुवाद की प्राचीन परंपरा रही है। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास द्वारा प्रकाशित 'तोत्तोचान' और 'पहला अध्यापक' जैसी पुस्तक हिंदी पाठकों और शिक्षा-जगत में क्रांतिकारी स्थान रखती है। अनुवाद की परंपरा को रेखांकित करने वाला देवशंकर नवीन का शोध लेख 'हिंदी की अनुवाद परंपरा' बहुत महत्वपूर्ण है। नलिन चौहान का शोधपरक लेख—'भारत में कागजी मुद्राओं का इतिहास' पठनीय और रोचक है। मेहेर बान, राघव चेतन राय, दिविक रमेश, केवल गोस्वामी, सरिता शर्मा के अनुवाद प्रवाहमय तो हैं ही साथ ही विषय वैविध्य की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं। अनुपम जी जैसे समर्पित व्यक्ति पर सचिन कुमार जैन का स्मृति लेख उनके समर्पण की मार्मिक झाँकी है। सेठ गोविंद दास जी ने अपने लेख में जिस गुलामी की ओर संकेत किया है, हम आज भी उससे मुक्त नहीं हो सके। शिव कुमार पाण्डेय का आलेख 'बस्तर का आदिम समाज' महत्त्वपूर्ण जानकारी लिए हुए है। यह संपादक की दृष्टि-व्यापकता ही है कि दूर-दराज के समाज की जानकारी पाठकों तक पहुँचाई है। अन्य सामग्री भी महत्त्वपूर्ण एवं पठनीय है। हमारे देश की बहुत-सी दुर्लभ पुस्तकें अनुवाद के अभाव में लुप्त होने के कगार पर हैं। समय पर अनुवाद करके उस संपत्ति को बचाया जा सकता है।

—रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'

'पुस्तक संस्कृति' का जनवरी-मार्च-2017 अंक फगवाड़ा के बाल साहित्य पर आयोजित संगोष्ठी में मिला। इसे पुस्तक संस्कृति की बजाय भारतीय संस्कृति के पास मान रहा हूँ। अनुवाद हमें अन्य भाषाओं के साहित्य से परिचित करवाकर भारत से ही तो परिचित करवाता है। इस अंक में उपासना झा की कहानी पीछा करती रहती है। फकर जमाल की कविता 'किताब बहुत गहरी है' और 'पुस्तकों से नई पीढ़ी से' जोड़ने के सवाल को खूबसूरती से उठाती है। नई पुस्तकों की जानकारी व संक्षिप्त समीक्षा भी पुस्तक संस्कृति को प्रोत्साहित करती है। सुंदर अंक और सशक्त रचनाओं के लिए संपादकीय मंडल को बधाई।

कमलेश भारतीय, हिसार (हरियाणा)

'पुस्तक संस्कृति' के पर्व विशेषांक (अक्तूबर-दिसंबर, 2016) को पढ़ते हुए नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया के उत्कृष्ट प्रकाशनों की स्वस्थ परंपरा का सतत् 'पर्व' भी सोच में समांतर रूप से चलता रहा। सच कहूँ तो अंक की सामग्री ने सम्यक रूप से बहुत-सा पाठकीय संतोष नहीं दिया। पढ़ते हुए बार-बार प्रतीत होता रहा कि सामग्री और बेहतर क्यों नहीं? आँचलिक पर्वों की प्रस्तुति थोड़ा सीमित लगी। कहानी, कविता तथा अन्य आलेख भी विशेष उल्लेखनीय नहीं। हाँ, पुस्तक समीक्षा का खंड फिर भी बेहतर लगा। हालाँकि समीक्षा में पुस्तक परिचय के अलावा समकालीन लेखन के क्षेत्र में उस कृति विशेष की भूमिका और प्रासंगिकता पर भी बात होनी चाहिए, जिसका अभाव लगा। पत्रिका के अगामी अंकों में संभवतः वरिष्ठ पाठकों को रचनात्मक स्तर पर उज्ज्वलतर सामग्री पढ़ने को मिलेंगी—शुभकामनाओं के साथ।

—राजकुमार गौतम, नोएडा, उ.प्र.

आपकी राय का स्वागत है

'पुस्तक संस्कृति' पत्रिका में प्रकाशित सामग्री पर आपके सुझाव, राय का सदैव स्वागत है। देश-दुनिया के साहित्यिक-सांस्कृतिक परिवेश, प्रकाशन जगत् की गतिविधियों पर आपकी सम्मति के लिए इस स्थान पर आपके पत्र/ईमेल की प्रतीक्षा है।

संपादक, पुस्तक संस्कृति, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नेहरू भवन, 5, इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़-2, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070.
संपर्क : 267-07758/07876/07700
ईमेल : editorpustaksanskriti@gmail.com

राधाकांत भारती

जन्म : 12 दिसंबर 1939

शिक्षा : भूगोल, हिंदी में स्नातकोत्तर के साथ-साथ विधि, पत्रकारिता में उपाधि।

प्रकाशन : गत 40 वर्षों से विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के लिए लेखन। भारत की नदियाँ, हमारे पूज्य स्थल, कहावतों की कहानियाँ, मॉडर्न टेंपल्स ऑफ इंडिया सहित हिंदी व अंग्रेजी में 14 पुस्तकें।

सम्मान : हिंदी अकादमी, दिल्ली सहित कई संस्थाओं द्वारा सम्मानित।

संपर्क : 011-25825916

'गंगा : कितनी निर्मल कितनी अविरल?'

गंगे च यमुने चैव, गोदावरि सरस्वती।
नर्मदा, सिंधु, कावेरी, जले अस्मिन् सन्निधं कुरु।।

"हे पतितपावनी माँ गंगा, हे यमुना, हे गोदावरी, हे सरस्वती, हे नर्मदा, सिंधु और कावेरी, सब करो कृपा, प्रकट हो इस जल में जिससे मैं कर सकूँ आत्मशुद्धि!" इस प्रार्थना का सार यही है कि सभी नदियाँ बहुमूल्य हैं और गंगा भारत की सभी नदियों और हर तरह के जल की मूल प्रतीक है।

आदि काल से ही गंगा भारत की आस्था, श्रद्धा और पूजा की, ईश्वरीय कृपा और दिव्य मंगलमयी कामना की नदी रही है।

पौराणिक विश्वास है कि स्वर्ग से उसकी उत्पत्ति तथा उसके जीवनदायी, आत्मिक मुक्तिदायी जल के कारण भारत की जनता गंगा को देवी मानकर पूजती है। इस प्रकार गंगा भारत की सभी पौराणिक कथाओं, धार्मिक अनुष्ठानों और उत्सवों का अभिन्न अंग बन गई है।

पं. जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में, "गंगा की कहानी, उसकी उत्पत्ति से लेकर सागर में मिलने तक प्राचीन काल से अर्वाचीन तक, भारत की सभ्यता और संस्कृति की कहानी है।"

गंगा की विशेषताएँ

- गंगा की घाटी में देश की 37 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या निवास करती है।
- गंगा देश की एक-तिहाई जनसंख्या की रोज़ी-रोटी का आधार है।

● गंगा घाटी से भारत के दस राज्यों में पानी की आवश्यकता पूरी होती है और इनके पानी का निकास भी गंगा में होता है। ये राज्य हैं—हरियाणा, उत्तराखंड, उत्तर प्रदेश, बिहार, पंजाब, पश्चिम बंगाल, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश और दिल्ली।

● गंगा की घाटी में बड़े पैमाने पर खेती होती है। देश में कुल सिंचित भूमि का 47 प्रतिशत भाग गंगा घाटी में है।

● गंगा घाटी में विभिन्न प्रकार की फसलें उगाई जाती हैं जैसे धान, गेहूँ, गन्ना, कपास और जूट आदि।

● गंगा घाटी में प्रतिवर्ष होने वाली कुल वर्षा की तीन-चौथाई से अधिक बरसात जून से सितंबर तक के चार महीनों में होती है।

● प्राचीन काल से ही गंगा देश के विभिन्न भागों के बीच परिवहन का प्रमुख साधन रही है। आज भी पटना और कोलकाता के मध्य दूसरे शहरों में इसकी धारा में बड़े-बड़े स्टीमर चलते हैं।

कुंभ मेला गंगा से संबद्ध विशालतम धार्मिक उत्सवों में से एक है। पौराणिक कथाओं के अनुसार, जब सुर और असुर ने मिलकर समुद्र का मंथन किया तो उसके महासंग्राम की स्मृति में गंगा तट पर मेले का आयोजन होता है।

गंगा : राष्ट्रीय नदी घोषित

भारत की पावन नदी गंगा में बढ़ते प्रदूषण से जनमानस ही नहीं, सरकार भी चिंतित है। इस समस्या को गंभीरता से लेते हुए भारत सरकार ने गंगा को राष्ट्रीय नदी घोषित किया है। साथ ही गंगा नदी बेसिन प्राधिकरण का गठन हुआ है।

पर्यावरणविद् श्री मेहता के अनुसार, "गंगा को राष्ट्रीय नदी घोषित करना सरकार का बहुत अच्छा कदम है।" भारत के पर्यावरणविद् अरसे से यह माँग करते आए हैं कि गंगा को हैरिटेज नदी घोषित किया जाए। ऐसी कोई एक शुरुआत तो होनी चाहिए क्योंकि हर नदी को जीने का अधिकार है। नदी का जीना पूरे पर्यावरण और मनुष्य के जीवन के लिए भी जरूरी है। नदी से छेड़छाड़ का अर्थ है कि हम अपना जीवन नष्ट कर रहे हैं। गंगा के साथ अब तक यही हुआ है। पहले उसमें ढेरों प्रदूषण मिलने दिए गए, फिर उसकी साफ-सफाई के नाम पर दिखावा हुआ। गंगा एक्शन प्लान के नाम पर हजारों करोड़ रुपये खर्च होने के बाद भी गंगा की हालत में कोई सुधार नहीं हुआ।

पवित्रता हमसे हमेशा कुछ जवाबदेही की माँग करती है। किसी चीज को हम पवित्र मानते हैं, तो उसके प्रति कुछ जिम्मेदारियाँ भी अंगीकार करते हैं। ऐसी उचित भावना देश की सबसे पवित्र नदी के प्रति इस कदर नदारद क्यों है, सोचकर आश्चर्य होता है। गंगा को राष्ट्रीय नदी घोषित किया जाना एक महत्त्वपूर्ण कदम है, जो स्वागत योग्य है। इस संदर्भ में गंगा बाढ़ नियंत्रण आयोग के अध्यक्ष तथा केंद्रीय जल आयोग के पूर्व अध्यक्ष आर. सी. झा से विस्तृत चर्चा हुई है। निष्कर्ष के रूप में यह उल्लेखनीय है कि गंगा जलधारा को सुरक्षा प्रदान करने के लिए केंद्र तथा राज्य सरकारों के द्वारा किए गए प्रयासों में तेजी आई है। फिर भी समस्या का समाधान नहीं हो रहा है। वर्तमान परिस्थितियों में केवल सरकारी निकायों द्वारा ही नहीं, बल्कि स्वैच्छिक संस्थाओं से सक्रिय सहयोग लेकर जागरूकता पैदा करने की जरूरत है।

इस दिशा में गंगा को प्रदूषण से उबारने के लिए कई स्वयंसेवी संस्थाओं तथा व्यक्तियों ने पहल की है, जिनमें कानपुर के गंगा रक्षा मंच के नेता रामजी त्रिपाठी, इलाहाबाद के प्रो. एस.एस. ओझा और श्री राजीव अग्रवाल का नाम उल्लेखनीय है। ऐसा ही अभियान वाराणसी में वयोवृद्ध इंजीनियर मिश्रा जी ने आरंभ किया है। गंगा की रक्षा के ये प्रयास अभिनंदनीय हैं।

केवल गंगा के किनारे बसने वाले ही नहीं, अपितु देश-विदेश के लाखों श्रद्धालुजन 'जय गंगे' का उद्‌घोष करते हुए गंगा नदी में स्नान-ध्यान कर रहे हैं और मानते हैं कि गंगाजल पीने से सारी व्याधियाँ दूर होती हैं तथा मरणोपरांत मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसी कारण भारतवासी गंगा को एक निर्जीव धारा नहीं बल्कि रोग-शोक हरण करने वाली ममतामयी माँ गंगा का संबोधन देते हैं।

भारतीय जन आस्था का प्रतीक बनी गंगा की महिमा अनंतकाल से चली आ रही है। गंगा-दर्शन और गंगा स्नान की भावना भारतवासियों में, विशेषकर हिंदुओं में, बहुत ही प्रबल है। श्रद्धालुओं की मान्यता है कि वाराणसी अथवा प्रयागराज में गंगा तट पर मृत्यु से उन्हें स्वर्ग की प्राप्ति होगी, यह विश्वास पूर्ववत् आज भी बना हुआ है।

> **"गंगा पर ऐसी घोर आस्था क्या अंधविश्वास है? नहीं, क्योंकि अब अनेक प्रकार के वैज्ञानिक विशेषज्ञों द्वारा यह बात प्रमाणित हो चुकी है कि गंगाजल में कतिपय ऐसे अद्‌भुत गुण विद्यमान हैं जो कि पवित्रता के साथ ही उसकी श्रेष्ठ गुणवत्ता को प्रमाणित करते हैं। यह तो सर्वविदित है कि गंगा का पानी महीनों तक रखे रहने के बाद भी शुद्ध बना रहता है, सड़ता नहीं है।"**

गंगा पर ऐसी घोर आस्था क्या अंधविश्वास है? नहीं, क्योंकि अब अनेक प्रकार के वैज्ञानिक विशेषज्ञों द्वारा यह बात प्रमाणित हो चुकी है कि गंगाजल में कतिपय ऐसे अद्‌भुत गुण विद्यमान हैं जो कि पवित्रता के साथ ही उसकी श्रेष्ठ गुणवत्ता को प्रमाणित करते हैं। यह तो सर्वविदित है कि गंगा का पानी महीनों तक रखे रहने के बाद भी शुद्ध बना रहता है, सड़ता नहीं है। वैज्ञानिकों के अनुसार, पानी के सड़ने या दूषित होने की मुख्य वजह बैक्ट्रिया नामक जीवाणु है।

गंगाजल की गुणवत्ता तथा उसके रासायनिक विश्लेषण का कार्य देश-विदेश की प्रयोगशालाओं में चलता रहा है। इस

दिशा में बंगलौर की एक संस्था 'गंगाजोन' के संस्थापक डॉ. जय राम चंद्र का शोध कार्य कई नई दृष्टि देने वाला है। उनके अनुसार, गंगाजल में पवित्र रहने की क्षमता एक विशेष रसायन की वजह से है। प्रो. भार्गव द्वारा प्रस्तुत रहस्यमय एक्स फैक्टर का अध्ययन करने के उपरांत डॉ. राम चंद्र इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं। साथ ही डॉ. शुक्ला के 'बैक्ट्रियोफेज सिद्धांत' से सहमति प्रदर्शित करते हुए इन्होंने स्थापित किया है कि इस बैक्ट्रियोफेज में ही वह अद्भुत क्षमता है, जिससे गंगाजल निर्मल बना रहता है। इस प्रकार महिमामयी गंगा भारतीय संस्कृति की प्रतीक ही नहीं, बल्कि कोटि-कोटि भारतवासियों के जीवन का अवलंब है। इसकी लहरों पर लोकगीत के गान गूँजते हैं तो जलधाराएँ भारत भूमि में फैले खेत और बाग-बगीचों की सिंचाई करती हैं। किंतु बढ़ती हुई आबादी के कारण गंगाजल भी कलुषित होने लगा है और इस प्रकार अब इसे भी उपचार की आवश्यकता है।

अंततोगत्वा यह प्रश्न जनमानस को उद्वेलित कर देता है—गंगा : कितनी निर्मल—कितनी अविरल? इस संदर्भ में उल्लेखनीय है कि 7 जुलाई 14 को भारत सरकार द्वारा इस ज्वलंत प्रश्न पर उच्च स्तरीय संगोष्ठी 'गंगा मंथन' के नाम से आयोजित की गई, जिसमें अनेक मंत्रियों, जनप्रतिनिधियों तथा विशेषज्ञों ने भाग लेकर महत्त्वपूर्ण विचारों को अभिव्यक्ति दी। लेकिन समस्या अब भी वहीं की वहीं है। आखिर कारण क्या है? गौर करने की बात है कि हमारे प्यारे भारतवर्ष में सिद्धांतों और उपदेशों की कमी नहीं है। कमी है, इन्हें कार्यरूप में पारित करने की, जो कि वांछित रूप में पूरा नहीं हो पाता है। उल्लेखनीय है कि जलसंसाधन और न ही विकास का विषय वर्तमान भारतीय संविधान के अनुसार राज्यों का विषय है। केंद्र सरकार अनुदान देकर सलाहकार की भूमिका अपनाती है।

ऐसी स्थिति में गंगा सफाई अभियान का हाल क्या होता है। किंतु गंगा प्रदूषण नियंत्रण अभियान के अंतर्गत राज्य सरकार के साथ भारत सरकार की संस्था केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड भी सतर्क है। इस आधार पर उम्मीद की जाती है कि पवित्र नदी गंगा में हो रहे प्रदूषण पर यथाशीघ्र नियंत्रण हो सकेगा।

दूसरी ओर स्थिति अत्यंत विडंबनापूर्ण लगती है। गौर करें, गंगा कार्य योजना 1985 में आरंभ हुई। इसे सन् 1990 तक पूरा होना था, इसे 2000 तक विस्तार दिया गया। पुनः इसे कई बार विस्तार देकर 2008 में इसकी प्रगति पर उच्चस्तरीय विचार किया गया जिससे पता चला कि इस योजना की शुरुआत के बाद गंगा के प्रदूषण स्तर में कमी नहीं बल्कि 28 प्रतिशत की वृद्धि हो गई है।

> **'गंगा : कितनी निर्मल–कितनी अविरल' पर नये सिरे से विचार करके उसे कार्यरूप में परिणत करने की आवश्यकता है। इसके लिए जरूरी है कि उन करोड़ों लोगों को साथ लें जो गंगा से व्यावहारिक रूप से जुड़े हैं, जिनकी भूसंपदा को गंगा सींचती है, जिनकी आजीविका गंगा पर निर्भर है। वे भक्त लोग भी शामिल हों जो भक्तिभाव से गंगा की पूजा-अर्चना करते हैं, किंतु अज्ञानतावश प्रदूषित भी करते हैं।**

ऐसी प्रतिकूल परिस्थिति में सरकार ने इस मामले में गंभीरता से विचार किया तथा अंततोगत्वा समस्या के समुचित निवारण के लिए गंगा को राष्ट्रीय नदी घोषित किया गया है। साथ ही गंगा कार्ययोजना के चरण-2 के उपरांत भारत सरकार ने राष्ट्रीय नदी संरक्षण निदेशालय का गठन कर इस मामले में प्रभावी कार्यक्रमों की शुरुआत की है।

रास्ता क्या है?

इस संदर्भ में कई स्तरों पर विचार-विमर्श होता रहा है। पावन गंगा में बढ़ता प्रदूषण और शिथिल होती जलधारा की विकट समस्या केवल सरकारी नियमों के द्वारा पारित प्रस्तावों से नियंत्रण में नहीं आएगी। इसके लिए आवश्यक है कि इसे जन आंदोलन का स्वरूप दिया जाए। इसमें उन सभी की सहभागिता हो जो गांगेय क्षेत्र के निवासी हैं और प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में गंगाजल का उपयोग करते आ रहे हैं।

एक पंथ दो काज

यह विदित तथ्य है कि 1985 में सरकार द्वारा आरंभ किए गए गंगा सफाई अभियान में करोड़ों रुपये के सरकारी धन का व्यय हुआ। इसके बाद भी गंगा तो साफ नहीं हो सकी। सरकारी धन अवश्य ही साफ हो गया।

पिछले कुछ वर्षों से गंगाजल और उसमें प्रदूषण की काफी चर्चा हो रही है। इस दौरान 2000 से 2007 तक सरकारी तथा गैर-सरकारी एजेंसियों ने गंगा नदी का सर्वेक्षण किया तथा इसके जल की गुणवत्ता की जाँच की। इसमें हरिद्वार निवासी प्रो. स्वरूप भार्गव तथा डॉ. बी.डी. जोशी का नाम उल्लेखनीय है।

प्रो. भार्गव ने आई.आई.टी. कानपुर में प्रो. जी.डी. अग्रवाल के अधीन गंगाजल पर अनुसंधान कार्य किया। बाद में रुड़की विश्वविद्यालय में जल विज्ञान के प्रोफेसर रहे। सेवानिवृत्त होने के बाद भी प्रो. भार्गव हरिद्वार में गंगा तट पर रहकर अपने लेखन तथा अनुसंधान का काम करते रहते हैं।

कानपुर से वाराणसी तक गंगा के प्रवाह पर प्रो. भार्गव ने अनुसंधान कार्य पूरा कर यह स्थापित करने का सफल प्रयास किया है कि गंगाजल में रासायनिक तत्त्व मौजूद हैं, जो प्रदूषित पदार्थों को नष्ट कर गंगाजल को निर्मल बनाए रखते हैं।

गंगा में प्राप्त इन रासायनिक तत्त्वों का नामकरण एक्स फैक्टर के रूप में किया गया है, जो कि गंगोत्री से गंगासागर तक की जलधारा में मौजूद है। जल में सड़न पैदा करने वाला रसायन पैथोजेन भी माना गया है। प्रो. भार्गव ने बहुत सरल तरीके से एक प्रयोग प्रस्तुत किया। कानपुर स्थित प्रयोगशाला में शीशे के दो पात्र (बीकर) लिए

गए। दोनों में गंगाजल डालकर पैथोजेन रसायन मिला दिया गया। एक को उबाला गया, दूसरे को बिना उबाले तीन घंटे तक रखा गया। परिणाम अत्यंत आश्चर्यजनक रहा—गंगाजल के उबले हुए बर्तन में पैथोजेन से सड़न पैदा हो रही थी, जबकि बिना उबले हुए गंगाजल में तीन घंटे के अंतराल में ही पैथोजेन जीवाणु समाप्त हो गए थे। ऐसे अनेक प्रयोगों पर आधारित प्रो. भार्गव के शोध कार्यों के विवरण संसार की प्रमुख पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं।

प्रदूषण के मुख्य स्रोत

अनुमान है कि करोड़ों लीटर मैला जल प्रतिदिन गंगा में डाला जाता है, गंगा में प्रदूषण के मुख्य कारण हैं :

- कूड़ा-करकट जो हम नदी किनारे और कभी-कभी नदी के अंदर फेंकते हैं।
- उद्योगों से निकले रासायनिक पदार्थ और दूषित जल।
- खेत से बहकर आए रोगनाशकों और कीटनाशकों के हानिकारक अवशेष, शव इत्यादि।

के निकट गंगाधारा में सर्वाधिक प्रदूषण की स्थिति पाई गई है।

कानपुर महानगर के निकट गंगाधारा की स्थिति अत्यंत चिंताजनक है, क्योंकि यहाँ नगर सीवेज का गंदा पानी, कारखानों का अपशिष्ट पदार्थ तथा विषाक्त रासायनिक तत्त्वों की अवांछित अपार राशि गंगा में उड़ेली जाती है। यहाँ गंगा में बढ़ते प्रदूषण के लिए चमड़ा उद्योग भी उत्तरदायी है। कानपुर में चमड़े के करीब 155 छोटे-बड़े कारखाने हैं, जिनमें रासायनिक प्रक्रिया से कच्चे चमड़ों

इनकी प्रमाणित उपलब्धियों में पूर्ण पुस्तक 'नेचर एंड द गंगा' 2004 में प्रकाशित हो चुकी है।

नदी प्रदूषण क्या है?

साधारण शब्दों में प्रदूषण पानी को किसी विशेष प्रयोग के लिए उपयुक्त नहीं छोड़ता है। जब जल एकदम साफ होता है, जैसे कि देव प्रयाग में है। हम उसे सीधे नदी से ही पी सकते हैं, किंतु जब यह थोड़ा गँदला होता है और इसमें कूड़ा-करकट और दूसरी गंदगी मिल जाती है, तो हम न तो इसमें स्नान कर सकते हैं, न इसे पी सकते हैं।

- नदी किनारे त्यागा गया मल-मूत्र और अन्य अपशिष्ट।

इनके अलावा भी कारण तो अनगिनत हैं, परंतु प्रदूषण के ये सभी कारण आकस्मिक नहीं हैं, भले ही हम जानबूझकर गंगा को प्रदूषित करना न चाहते हों, फिर भी अज्ञानतावश ऐसा कर बैठते हैं।

पावन गंगा को सर्वाधिक प्रदूषित करने वाले इसके प्रवाह पथ में दो स्थलों की पहचान की गई है। गोमुख से लेकर गंगा सागर तक गंगा के प्रवाह पथ का सर्वेक्षण कर प्रदूषण स्थलों की पहचान की गई है। इस रिपोर्ट में कानपुर तथा इलाहाबाद नगरों

की धुलाई और रँगाई की जाती है। इसका अपशिष्ट पदार्थ गंगा की गोद में फेंका जाता रहा है। चिंताजनक स्थिति यह है कि सरकार तथा न्यायालयों द्वारा रोक लगाए जाने पर भी स्थिति नियंत्रण में नहीं आ सकी है।

इलाहाबाद—गंगा-यमुना नदियों के संगम पर स्थित इस नगर को तीर्थराज प्रयाग का महत्त्वपूर्ण संबोधन दिया गया है। किंतु यह घोर आश्चर्य की बात है कि पूज्य स्थलों के रूप में प्रसिद्ध यहाँ के त्रिवेणी संगम स्थान पर गंगाजल में प्रदूषण की मात्रा अधिक पाई गई है।

इलाहाबाद नगर के अलावा यहाँ नैनी स्थित अनेक छोटे-बड़े कारखानों का अपशिष्ट भी यमुना में आकर गंगा में मिलता रहता है। संगम नगर इलाहाबाद में गंगा में प्रदूषण अधिक होने का एक अन्य कारण संगम पर लगने वाले धार्मिक मेले हैं। विशेष कर कुंभ के दौरान यहाँ भयंकर प्रदूषण की स्थिति आ जाती है। ऐसी स्थिति को नियंत्रित करने के लिए स्थानीय निकायों तथा सरकार को प्रभावी कदम उठाने की अनिवार्य आवश्यकता है। तभी पावन गंगा की निर्मलता को बनाए रखना संभव हो सकेगा।

गंगा कार्ययोजना

दिसंबर 1984 में पर्यावरण विभाग ने स्वीकृत रिपोर्ट के आधार पर गंगा के प्रदूषण की समस्या से निपटने के लिए एक कार्ययोजना तैयार की। इस योजना में नदी के किनारे बसे प्रथम श्रेणी के 27 शहरों में घरेलू गंदगी को गंगा के बजाय किसी और स्थान पर इकट्ठा करने और उसे साफ करने की व्यवस्था की गई। 5 फरवरी 1985 को प्रधानमंत्री श्री राजीव गाँधी ने राष्ट्र को संबोधित करते हुए यह घोषणा की– "गंगा भारत की प्रतीक है, हमारी पौराणिक कथाओं व कविताओं का स्रोत है तथा लाखों लोगों की पोषक है। आज यह सर्वाधिक प्रदूषित नदियों में से एक है। हम गंगा की प्राचीन पवित्रता को फिर से कायम करेंगे।"

इस घोषणा के एक माह के भीतर ही केंद्रीय गंगा प्राधिकरण का गठन हो गया। जून 1985 में पर्यावरण विभाग में इस कार्यक्रम के संचालन के लिए एक अलग से अनुभाग बना दिया गया। सातवीं पंचवर्षीय योजना में इस कार्य के लिए 240 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया। फिर 2001 में कार्यक्रम की विभिन्न योजनाओं को पूरा करने के लिए 663 करोड़ की राशि योजना चरण-2 के लिए दी गई थी।

गंगा : कितनी निर्मल–कितनी अविरल?

अब ऐसी स्थिति में– 'गंगा : कितनी निर्मल–कितनी अविरल' पर नये सिरे से विचार करके उसे कार्यरूप में परिणत करने की आवश्यकता है। इसके लिए जरूरी है कि उन करोड़ों लोगों को साथ लें जो गंगा से व्यावहारिक रूप से जुड़े हैं, जिनकी भूसंपदा को गंगा सींचती है, जिनकी आजीविका गंगा पर निर्भर है। वे भक्त लोग भी शामिल हों जो भक्तिभाव से गंगा की पूजा-अर्चना करते हैं, किंतु अज्ञानतावश प्रदूषित भी करते हैं। ऐसे प्रभावी कार्य ग्रामसभाओं, पंचायतों को साथ लेकर भारतीय लोक प्रशासन संस्थान के समन्वय से भी कराया जा सकता है।

गांगेय क्षेत्र में तीर्थ स्थलों और ग्रामीण अंचलों में गंगाधारा में दर्शन, मंजन, पान के अलावा शौच की भी पुरानी आदत है। इस अवांछित परंपरा में बदलाव की बहुत जरूरत है। इसमें यथोचित सुधार के लिए नदी तट पर से स्नान-घाट अलग हटकर स्नानघर तथा शौच स्थल बनाए जाएँ, जहाँ नदी जल (गंगाजल) को पाइप द्वारा उपलब्ध कराया जाए।

इसके साथ ही यह भी ध्यान देने की बात है कि गंगा सफाई का काम केवल गंगाधारा को साफ कर नियंत्रित करने से नहीं होगा बल्कि गंगा की सफाई के लिए इसकी सहायिकाओं में प्रदूषण नियंत्रण करना अनिवार्य आवश्यकता है, क्योंकि राजधानी दिल्ली से होकर प्रवाहित होने वाली यमुना की धारा भी दूषित होती रहती है। अतः ऐसे प्रभावी उपायों से ही पावन गंगा की धारा को निर्मल तथा अविरल बनाए रखा जा सकता है।

यह सुखद संयोग है कि इस महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए भारत सरकार भी सचेत होकर सक्रिय हो गई है। गंगा नदी संरक्षण विभाग ने सचिवों के समूह का गठन करके मार्ग दर्शन के लिए रोडमैप तैयार किया है। पूरे विश्व की दृष्टि हमारी ओर है कि हम किस प्रकार गंगा को अविरल और निर्मल बनाने के महान कार्य को पूरा कर रहे हैं। अब हम भारतवासियों का यह पुनीत कर्तव्य है कि गोमुख से गंगासागर तक गंगाधारा को अविरल और निर्मल बनाए रखने का सफल प्रयास करें।

अंततः इस कथन को सत्य प्रमाणित करना है, गोस्वामी तुलसीदास के शब्दों में–

समरथ को नहिं दोष गुसाईं,
रवि, पावक सुरसरि की नाईं।

आलेख के लिए संदर्भ सूची :

1. भारत 2015 प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली
2. योजना पत्रिका
3. भगीरथ पत्रिका, जल आयोग, नई दिल्ली
4. इंडिया-रीजनल– एच.के. स्पेट–लंदन
5. वाटर वेल्थ ऑफ इंडिया–डॉ. के.एस. राव–मैकलिन, नई दिल्ली
6. भारती की नदियाँ–राधाकांत भारती, एन.बी.टी. नई दिल्ली
7. अथ नदी कथा– डॉ. देवसरे, नई दिल्ली
8. मॉडर्न टेंपल ऑफ इंडिया– राधाकांत भारती
9. रिपोर्ट, जल संसाधन मंत्रालय 2014-15 दिल्ली
10. नेचर एंड द गंगा वाटर– प्रो. भार्गव

सुगंध कागज के फूल की

"आप?" मैंने आश्चर्य से पूछा।

"क्यों, आपको उम्मीद नहीं थी क्या? घर ढूँढ़ने में पूरा एक घंटा लगा है।" उसने हँसते हुए जवाब दिया। मुझे लगता है कि प्रतिक्रिया जाहिर करने में मैंने कुछ जल्दी कर दी है। ठीक है कि हम लगभग पंद्रह वर्षों के बाद मिल रहे हैं। उम्र में वह मुझसे छोटा है, फिर भी उससे संपर्क बनाए रखने के पर्याप्त प्रयत्न मैंने किए हैं। इसके बावजूद इतने लंबे समय तक मौन रहना उसी ने चुना है। मेरे भेजे हुए संदेशों, पत्रों और शुभकामनाओं को इस अवधि में पूरी तरह दरगुजर किया है उसने। फिर भी उसे आया देख मुझे इस तरह आश्चर्य व्यक्त नहीं करना चाहिए था।

"खड़े क्यों हैं? बैठिए तो सही।" मुसकराकर मैंने उसकी हँसी का प्रत्युत्तर दिया।

"पार्टी की एक मीटिंग में भाग लेने के लिए यहाँ आया था। आज दोपहर में भोजन करते समय आपके मित्र सर्वेश जी ने बताया कि आपका एक्सीडेंट हो गया है। मीटिंग से फारिग होते ही आपसे मिलने निकल पड़ा; मगर घर ढूँढ़ने में पूरा एक घंटा लग गया। सर्वेश जी से आपका पता इसलिए नहीं पूछा कि पूछने की जरूरत ही महसूस नहीं हुई।"

"जिस मकान में हजारों बार आप आए हैं, जहाँ सैकड़ों बार भोजन किया है, उस मकान को भूल जाऊँगा, यह बात कल्पना में भी नहीं आई थी। इसीलिए तो पता नहीं पूछा था। आपका नंबर भी मेरे पास नहीं था, वरना कहीं से फोन करके रास्ता पूछ लेता।"

"आखिर घर कैसे मिला?"

"गली के बाहर एक किराने वाले से पूछा।"

पत्नी पानी का गिलास लेकर आई। नमस्कार के औपचारिक आदान-प्रदान के बाद उसने पत्नी से कहा, "कोरा पानी ही पिलाइएगा! पहले पापड़ खिलाइए।"

पत्नी झेंप गई—"पापड़ ही क्यों, कुछ मीठा और नमकीन भी ले आती हूँ।"

"नहीं, जो पापड़ आपके यहाँ बनता है, सिर्फ उसी का स्वाद लेना चाहता हूँ।"

हँसते हुए पत्नी चली गई।

"कैसे कर दिया यह एक्सीडेंट?" वह मेरी तरफ मुखातिब हुआ।

"स्कूटर टकरा गया था।"

"क्या आया है एक्स-रे रिपोर्ट में?"

"घुटने के नीचे कंपाउंड फ्रैक्चर है। प्लास्टर बाँध दिया है, खुले तो पता लगे कि सही-गलत क्या हुआ है।"

"आपके एक्सीडेंट की खबर सुनकर मन में इतनी चिंता हुई कि शाम की व्यस्तता के बावजूद मैं अपने आपको रोक नहीं पाया।"

"याद है, हम लोग लगभग पंद्रह वर्षों के बाद मिल रहे हैं?"

"हाँ, इतना समय तो हो ही गया होगा।" उसने सोचते हुए कहा।

"इस अवधि में आपको मेरे संबंध में आज की सूचना से ज्यादा चिंता करने लायक कोई सूचना नहीं मिली?"

"आपके ऑपरेशन की खबर कहीं से मिली तो थी; लेकिन जब वह खबर मिली तब तक ऑपरेशन हुए इतना समय गुजर चुका

भगवान अटलानी

हिंदी व सिंधी के वरिष्ठ लेखक भगवान अटलानी की अब तक सत्ताईस पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

सम्मान/पुरस्कार :
राजस्थान साहित्य अकादमी के सर्वोच्च सम्मान मीरा पुरस्कार, राजस्थान सिंधी अकादमी के सर्वोच्च सम्मान सामी पुरस्कार और उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान के एक लाख रुपये के सौहार्द सम्मान से नवाज़े जा चुके अटलानी राजस्थान सिंधी अकादमी के पूर्व अध्यक्ष हैं।

संपर्क :
डी-183, मालवीय नगर, जयपुर-302017

था कि संपर्क करने की जरूरत महसूस नहीं हुई।"

"बिटिया की शादी का निमंत्रण पत्र मिल गया था?" मैंने पूछा।

"हाँ, मिला था। लेकिन उन दिनों मैं अमेरिका से लौटा ही था, इसलिए व्यस्तता कुछ अधिक थी।"

"एक बात बताइए, आपका इतने वर्षों तक चला मौन सायास तो नहीं था?"

"नहीं, यदि ऐसा होता तो मैं आज भी नहीं आता।" उसने कहा।

"हर साल दीवाली पर मेरा शुभकामना संदेश आपके पास पहुँचता रहा है। कभी-कभी मैं आपको पत्र भी लिखता रहा हूँ। इसके बावजूद आपने न कभी पत्र लिखा और न टेलीफोन किया। न जाने कितनी बार आपका इस शहर में आना हुआ है, फिर भी आपने संपर्क करने का प्रयत्न नहीं किया। इसलिए पूछ रहा हूँ कि मौन सायास तो नहीं था?"

"दरअसल व्यस्तता इतनी ज्यादा रहती है, काम इतना ज्यादा फैला दिया है कि पिछले सालों के दौरान किसी बात का होश ही नहीं था।"

"सचमुच आप क्या इतने व्यस्त थे कि टेलीफोन तक करना संभव नहीं था?" मैंने पूछा।

"अपनी बात समझा सकूँ, इसके लिए बहुत समय चाहिए—और आज इतना समय मेरे पास है नहीं। ठीक होने के बाद समय निकालकर किसी दिन आप आइए। फुरसत से अपनी बात आपके सामने रखूँगा। मुझे भरोसा है कि इसके बाद मेरी व्यस्तताओं को आप समझ सकेंगे।" उसने कहा।

"आपकी व्यस्तता में वहाँ आकर दखल डाल सकूँ, यह मैं नहीं चाहता। आपका यहाँ आना होता ही रहता है। किसी बार एक पूरा दिन मेरे नाम लिखकर यहीं आ जाइए।" मैंने कहा।

"मैं तो आ ही जाऊँगा, लेकिन मेरा आमंत्रण आपके लिए हमेशा खुला है।"

पत्नी पापड़ के साथ मिठाई और नमकीन की तश्तरी लेकर आई। कोई संकोच किए बिना उसने पापड़ का टुकड़ा तोड़कर खाना शुरू कर दिया।

"आप इतने व्यस्त रहे हैं कि निश्चय ही इस दौरान पढ़ना-लिखना, नाटक, गोष्ठियाँ आदि सब छूट गया होगा?" मैंने पूछा।

"विरोधाभास के चक्रव्यूह को भली भाँति समझने के बाद भी अनायास मैं एक प्रश्न का उत्तर ढूँढ़ता हुआ बार-बार अतीत की ओर खिंच जाता हूँ। पंद्रह वर्षों के बाद अचानक मेरा हालचाल पूछने के लिए वह क्यों आया?"

"इस दौरान लिखना तो बिलकुल ही नहीं हुआ, किंतु पढ़ता लगातार रहा हूँ। अरनेस्ट हैमिंग्वे का पूरा साहित्य पढ़ लिया है। लायंस क्लब का अध्यक्ष रह चुका हूँ। समाज में भी अग्रणी भूमिका रही है।" अचानक उसने बात बदल दी—"आपका बेटा भी तो बड़ा हो गया होगा?"

"वक्त के साथ सब बड़े हो जाते हैं।" मैं मुसकराया।

"क्या कर रहा है आजकल?"

"व्यवसाय कर रहा है।"

"आमदनी कितनी हो जाती है?"

"अभी शुरुआत है। छह-सात हजार रुपये निकाल लेता है।"

"आजकल छह-सात हजार से तो रोटी, कपड़ा और मकान भी नहीं जुटता। कोई कारखाना लगाने में आपकी रुचि नहीं है क्या?"

"छोड़िए, ज्यादा हाय-हाय करने से क्या होगा? पैसा जीवन का अंतिम सच तो नहीं है।" मैंने कहा।

"पहले भी आप ऐसा ही कहते थे और मैं पहले भी आपकी इस बात से सहमत नहीं होता था। जीवन को बहुत करीब से देखने के बाद इतना तो मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि पैसा जीवन का अंतिम सच चाहे न हो, किंतु जीवन में किसी भी दूसरी चीज से ज्यादा महत्त्वपूर्ण अगर कोई चीज है तो वह है पैसा। बहरहाल, अभी इन बातों को यहीं छोड़िए। मैं जल्दी फिर आऊँगा। समय मिला तो विस्तार से बात करेंगे।" उसने कहा।

"इस बार बहुत जल्दी में हैं, तो ठीक है। लेकिन अगली बार आप मुझे पंद्रह वर्षों के मौन का कारण भी बताएँगे।"

"आपको अपने बचपन से जानता हूँ। मुझे पता है कि आपके उठाए हुए सवाल तब तक चुप नहीं होते जब तक उनका संतोषजनक उत्तर आपको मिल नहीं जाता।" वह उठ खड़ा हुआ—"अच्छा, चलता हूँ। शीघ्र स्वास्थ्य-लाभ की कामना तो कर ही रहा हूँ, मेरे योग्य कोई और बात हो तो बताइए।"

"आपके योग्य बस इतना ही है कि जब भी अवसर मिलता है, स्वयं आकर या टेलीफोन करके बात जरूर कर लीजिए।"

वह ठहाका लगाकर हँसते हुए दरवाजे की तरफ बढ़ गया। मैंने पत्नी को उसे बाहर तक छोड़ आने का संकेत दिया।

उसका आना दुःखती हुई रग पर उँगली रखकर उसे छेड़ जाने जैसा है। मैं महसूस करता हूँ कि मेरे सोच की दिशाएँ केवल उसी की ओर जा रही हैं। अपरिलक्षित, अव्यक्त और अदृश्य-सी एक लहर मेरी चेतना को आच्छादित करती हुई मुझे घसीटकर बार-बार अतीत की भूलभुलैया में फेंक देती है। मैं कोशिश करता हूँ कि उसमें से बाहर निकलूँ। अतीत की जुगाली वर्तमान को समृद्धि प्रदान नहीं करती। अतीत विरोधी वर्तमान के सामर्थ्य में रोड़े अटकाता है। विरोधाभास के चक्रव्यूह को भली भाँति समझने के बाद भी अनायास मैं एक प्रश्न का उत्तर ढूँढ़ता हुआ बार-बार अतीत की ओर खिंच जाता हूँ। पंद्रह वर्षों के बाद अचानक मेरा हालचाल पूछने के लिए वह क्यों आया?

राजनीति में उसने एक खास जगह बना ली है। सत्ताधारी दल के साथ जुड़ा होने के कारण उसके चारों ओर मजमा लगाने वालों की कमी नहीं है। उसके पास बेशुमार दौलत है। दुकानों और मकानों से लाखों रुपये प्रतिमाह की आमदनी हो जाती है।

साहित्यकार और नाटककार उसकी कृपा-दृष्टि का क्षणिक स्पर्श पाकर भी निहाल होते हैं। उसके निर्माण में मेरा योगदान बहुत अधिक है। लेकिन इतने वर्षों के बाद एकाएक मुझसे मिलने का फैसला करने के पीछे कोई कारण विशेष तो रहा ही होगा। इस शहर में उसका बचपन गुजरा है। इसी शहर में स्कूल, कॉलेज ओर विश्वविद्यालयों की परीक्षाएँ उत्तीर्ण की हैं उसने। इसी शहर के छात्रावासों में अनेक वर्षों तक निवास किया है। ऐसा नहीं है कि इस शहर में जिनसे उसकी निकटता रही, ऐसे लोगों की संख्या कम होगी। उसके सहपाठी, उसके मित्र, उसके अध्यापक, उसके शुभचिंतक गिनने बैठेंगे तो उनकी तादाद कुछ ज्यादा होगी। मैं अपने आपको अधिक से अधिक लाभ दे सकता हूँ तो बस इतना ही कि हर कठिनाई के समय मेरे पास मदद के लिए वह दौड़ा आता था और सीमाओं के बावजूद उसे कठिनाई से निकालने में मैं कामयाब हो जाता था। यदि भावनात्मक स्तर पर निर्मित संबंधों को उसने सचमुच महत्त्वपूर्ण माना होता तो इतने लंबे समय तक मुझसे कटे रहने का कोई विशेष कारण न उसके पास था और न उसके पास है।

मुफलिसी के दौर में इस शहर में रहने वाले दो-दो भाइयों से तिरस्कृत वह कम से कम जो चाहता था, वह थी शिक्षा। अपनी ओर से मदद करके और इधर-उधर से सहायता जुटाकर मैं कोशिश करता कि उसकी पढ़ाई अबाध रूप से चले। भाइयों की ओर से घर से निकाल देने पर उसके आवास और भोजन की व्यवस्था जैसी मूलभूत जरूरतों को पूरा करने में भी मैं उसकी मदद करता था। मुसीबतों से वह टूटे नहीं, आत्मबल बना रहे, हीन भावना उस पर हावी न हो पाए, इस दृष्टि से मैं सभी प्रयत्न करता था।

वह कॉलेज में आया तो मैंने उसके लिए कुछ ट्यूशन जुटाई। उसे सलाह दी कि शहर में कमरा लेकर वहीं रहे। स्वयं भोजन बनाए और कम से कम खर्च में पढ़ाई पूरी करे। एक साल तो यह सब उसने किया, किंतु उसके बाद उसने छात्रावास में दाखिला ले लिया। दलीलें देकर वह मुझे समझाता कि बाहर कमरा लेकर रहने की तुलना में छात्रावास सस्ता पड़ता है। यहाँ तक तो ठीक था; किंतु छात्रावास में रहते हुए जो परिवर्तन मैं उसमें देखता था, वे चौंकाते थे।

छात्रावास में रहने वाले दूसरे लड़कों के कपड़े, परफ्यूम, स्कूटर और कॉलेज में पढ़ने वाले अमीर लड़कों एवं लड़कियों की कारें लेकर वह इस तरह चलता गोया खानदानी रईस हो। इधर-उधर से खबरें मेरे पास पहुँचतीं कि वह बहुत बड़े आदमी का बेटा है, उसके पिता बहुत पैसे वाले हैं; किंतु घर की दकियानूसी से भरी बातें उसे पसंद नहीं हैं। इसलिए घरवालों से कोई मदद लिए बिना

वह अपने बलबूते पर पढ़ रहा है। मैं उससे पूछता तो रहन-सहन के बारे में वह तर्क देने लगता। कहता—"गरीबी का अर्थ यह तो नहीं है कि आदमी बेचारा होकर रहे। अगर मैं साफ-सुथरा रहता हूँ तो उसमें एतराज क्या है?"

छात्र-छात्राओं के जिस वर्ग में वह उठता-बैठता था, उसमें जरूरी था कि अपने धन-सामर्थ्य का उचित प्रदर्शन वह भी करे। इस दृष्टि से जिससे, जब, जहाँ संभव हुआ, वह रुपये उधार लेता रहता और उसे कभी वापस नहीं लौटाता। चार्वाक उसका आदर्श पुरुष और चार्वाक का सिद्धांत उसका आदर्श जीवन-सूत्र प्रतीत होता था—'ऋणं कृत्वा धृतं पिबेत्'। आर्थिक उच्चता की एक अदम्य ललक यह सब करने की प्रेरणा देती थी उसे।

विश्वविद्यालय में प्रवेश लेने के बाद जल्दी ही एक लड़की से उसने प्यार की पेंगें बढ़ाईं। वह लड़की महिला छात्रावास में रहती थी और अमीर पिता की बेटी थी। उसे छात्रवृत्ति मिलने लगी थी। अपना 'क्रांतिकारी' स्वरूप विश्वविद्यालय में भी उसने बरकरार रखा था। जहाँ जरूरी हुआ, उसने स्वयं खर्च किया। अपने पास न हुआ तो उधार लेकर खर्च किया, अन्यथा अपनी प्रेमिका से खर्च कराता रहा। स्नातकोत्तर अंतिम वर्ष के दौरान उसने एक अन्य लड़की से प्रेम किया। वह स्वयं तो ये बातें मुझे कभी बताता नहीं था, किंतु अन्य स्रोतों से जानकारी मुझे मिलती रहती थी। लड़कियों को वह आश्वासन देता था कि पढ़ाई पूरी करके नौकरी करने के बाद उससे शादी कर लेगा। किंतु पढ़ाई पूरी करके नौकरी करने के बाद भी उसने उनमें से किसी लड़की से शादी नहीं की। इसके बदले जिस शहर में उसे नौकरी मिली थी, वहाँ के प्रसिद्ध डॉक्टर की लड़की से उसने संबंध बनाए। मेलजोल, निकटता, घर पर आना-जाना जब शारीरिक संबंधों में परिणत हो गए और उसकी भनक डॉक्टर को लगी तो विरोध हुआ। निर्णय अनिवार्य हो गया तो विवाह की बात चली; किंतु आर्थिक और सामाजिक अंतर के चलते डॉक्टर किसी भी स्थिति में विवाह के लिए तैयार नहीं था।

अदालत में विवाह करने का प्रयत्न डॉक्टर के प्रभाव के कारण असफल हो गया। विवाह की दिशा में दोनों के इरादों को देखकर डॉक्टर ने अपनी लड़की को अहमदाबाद भेज दिया। शायद यहीं उनसे गलती हो गई। लड़की ने उसे सूचना दे दी। वह अहमदाबाद पहुँच गया और अदालत में दोनों ने विवाह कर लिया। प्रारंभ में तो डॉक्टर ने लड़की से मिलने, उससे बात तक करने से इनकार किया; किंतु जब परिस्थिति सामान्य हो गई तो धीरे-धीरे दोनों का डॉक्टर के घर सामान्य रूप से आना-जाना प्रारंभ हो गया।

लड़की उस समय भी पढ़ रही थी, जब उन दोनों ने विवाह किया था। पढ़ाई पूरी करने के बाद लड़की का चयन एक बैंक में अधिकारी के रूप में हो गया। इधर उसने राजनीति में सक्रिय भाग लेना शुरू कर दिया। जल्दी ही नौकरी भी छोड़ दी। लगभग यहीं से मुझसे उसका संपर्क कम होते-होते एक प्रकार से टूट ही गया था।

हम दोनों के अनेक मित्र तथा परिचित समान थे, इसलिए उसके हालचाल मुझे मिल जाते थे। पैसा बटोरने की उसकी बढ़ती हुई प्रकृति, समाजसेवा के नाम पर पैसा लेने का उसका सिलसिला संपत्ति क्रय-विक्रय के कारोबार के बहाने ऊँचाइयाँ छूने लगा। तेज-तर्रार, भ्रष्ट, हर प्रकार की उठा-पटक में पारंगत वह मुश्किल से मुश्किल काम भी कर लेने के लिए मशहूर हो गया। जल्दी ही अकूत संपत्ति का विशाल साम्राज्य उसने खड़ा कर लिया। दुकान और मकान का मोटा किराया स्थायी आमदनी के रूप में उसके पास आने लगा। घर में सभी प्रकार की आधुनिक सुख-सुविधाएँ, तीन-तीन गाड़ियाँ और विमान यात्राएँ उसके जीवन का क्रम बन गईं।

> **पैसा बटोरने की उसकी बढ़ती हुई प्रकृति, समाजसेवा के नाम पर पैसा लेने का उसका सिलसिला संपत्ति क्रय-विक्रय के कारोबार के बहाने ऊँचाइयाँ छूने लगा। तेज-तर्रार, भ्रष्ट, हर प्रकार की उठा-पटक में पारंगत वह मुश्किल से मुश्किल काम भी कर लेने के लिए मशहूर हो गया। जल्दी ही अकूत संपत्ति का विशाल साम्राज्य उसने खड़ा कर लिया।**

आज वह बता रहा था कि पिछले तीन-चार वर्षों से वह उच्च रक्तचाप का शिकार हो गया है। चालीस वर्ष की आयु और उच्च रक्तचाप अपने आप में संकेत है इस बात का कि कितने दबाव और तनाव के बीच उसने अपना रास्ता बनाया है। उसका उच्च रक्तचाप चिल्ला-चिल्लाकर पूछ रहा है कि राजनीतिक दौड़ ने, धन-प्राप्ति की लिप्सा ने आज के लिए तो उसे बहुत कुछ दिया है, किंतु कल जब वह अक्षम हो जाएगा तब उसे कौन पूछेगा?

अपने इस सवाल के निहितार्थ समझकर मेरे होंठों पर हँसी नमूदार होती है। राजनीति का धंधा करने वाले कभी अक्षम होते हैं क्या? पद और प्रभाव के अनुरूप वे अधिक—और अधिक सक्षम तो हो सकते हैं, किंतु अक्षम कभी नहीं हो सकते।

मैं लौटकर फिर उसी सवाल से जूझने लगा हूँ कि जिस व्यक्ति का जीवन सदा धन-प्राप्ति के लिए समर्पित रहा है, जिस व्यक्ति ने जानबूझकर तय किया है कि किसके साथ उसे संबंध रखना चाहिए, जिस व्यक्ति ने योजनापूर्वक उन सभी बाधाओं को तहस-नहस किया है कि जो धन और प्रभाव-प्राप्ति की दिशा में रुकावट बन सकती हैं, उसे मुझ जैसे सामान्य व्यक्ति का हालचाल पूछने के लिए आने की क्या जरूरत थी? तभी मुझे ध्यान आता है, बातचीत में उसने जिक्र किया था कि इस अवधि में और कुछ चाहे न कर सका हो, किंतु पढ़ता लगातार रहा है। हैमिंग्वे का पूरा साहित्य पढ़ने का दावा भी उसने किया था। यह बुद्धि के साथ, बुद्धिजीवियों के साथ, कलाधर्मियों के साथ जुड़े रहने की ललक नहीं है क्या? पहली वरीयता पैसा है; क्योंकि उसके साथ प्रभाव और पद हैं। किंतु हृदय के किसी कोने में साहित्य और कला के साथ जुड़े लोगों के प्रति एक लगाव, या कहा जाए, श्रद्धा भाव भी है। वरीयता क्रम में यह लगाव क्योंकि नीचे है, इसलिए उसके लिए समय भी कम देता है वह।

वह राजनीति में है, राजनीति कर रहा है—और राजनीति में सब कुछ जायज होता है। कहीं ऐसा तो नहीं है कि राजनीति में महत्त्वपूर्ण बने रहने की अपनी वरीयता को इस बहाने वह पुष्ट कर रहा है? लेखकों, कलाधर्मियों, नाट्यकर्मियों और बुद्धिजीवियों के बीच उसका सम्मानजनक स्थान बनता है तो राजनीति में लाभ मिलेगा। उसकी दृष्टि कालांतर में मिलने वाले फायदों की ओर हो, यह भी तो हो सकता है।

मुझे लगता है कि एक्सीडेंट की खबर सुनकर पंद्रह वर्षों बाद वह मुझसे मिलने नहीं आया। उसके लिए पंद्रह वर्ष पहले मैं जो कुछ था, वह असामान्य या महत्त्वपूर्ण कतई नहीं था। बुद्धिजीवियों की सदाशयता प्राप्त करना एकमात्र उद्देश्य रहा है उसका। भविष्य में आने के बारे में वह पूरी तरह से वादामुक्त रहा है। भविष्य में आने, न आने; मेरा कोई काम करने, न करने की दृष्टि से उसने कुछ भी स्पष्ट नहीं कहा। राजनीति में प्रगतिकामी व्यक्ति की तरह मेरे पास आना जनसंपर्क की दृष्टि से एक कदम है उसका।

पत्नी बिस्तर के पास लगी कुरसी पर बैठी है। उसके चेहरे पर प्रसन्नता एवं प्रफुल्लता है। मैं जानता हूँ कि इसका कारण वह व्यक्ति है, जो अभी थोड़ी देर पहले यहाँ से गया है। संभव है, पत्नी के मन में उसके संपर्क से मिलने वाले लाभ की कल्पना सूर्य किरण की तरह चमकने लगी हो। किंतु लॉलीपॉप की तरह ही सही, जो अपेक्षा और संतोष वह पत्नी को दे गया है, अपने आप में वह भी कम नहीं है। मैं पत्नी से कहना चाहता हूँ कि मुँह में रखी मिठाई के टुकड़े की तरह बहुत जल्दी स्वाद का अहसास उसे अपनी जबान से तिरोहित कर देना चाहिए।

किंतु यह सोचकर चुप रह जाता हूँ कि उस कल्पना की उम्र जितनी बढ़ सके, अच्छा है। सुगंध चाहे कागज के फूल की क्यों न हो, सुख तो देती ही है। उसकी दृष्टि हमारी तरह के लोगों के इस्तेमाल पर रही होगी; किंतु इस बहाने जो खुशफहमी पत्नी के मन में पैदा हुई है, उसे समाप्त करने की जल्दी मैं क्यों करूँ? इन छोटे-छोटे सुखों के सहारे जीवन व्यतीत करने के अलावा यों भी हमारे पास है ही क्या! उदारतामिश्रित दया भाव से पत्नी की तरफ देखते हुए मैंने करवट बदल ली।

किताबों के बिना जिंदगी अधूरी है

–प्रकाश जावड़ेकर

भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय के माननीय मंत्री श्री प्रकाश जावड़ेकर का जन्म 30 जनवरी 1951 को पुणे में श्रीमती रजनी और श्री केशव कृष्ण जावड़ेकर के घर हुआ था। वे छात्र जीवन से ही समाज सेवा व राजनीति में सक्रिय रहे। प्रारंभ में दस वर्षों तक उन्होंने बैंक को अपनी सेवाएँ दीं। वे 1990 से 2002 तक महाराष्ट्र विधानसभा के सदस्य रहे। सन् 2008 में राज्यसभा के लिए निर्वाचित हुए। श्री जावड़ेकर ने मराठी में कई पुस्तकें भी लिखी हैं। 'रूरल डेवलपमेंट एंड बैंक्स रोल इन कोऑर्डिनेटेड एप्रोच' शीर्षक से शोध पत्र पर आपको 'सर पुरुषोत्तम दास ठाकुर स्मृति राष्ट्रीय सम्मान' भी प्रदान किया गया। विश्व पुस्तक मेला-2017 के दौरान राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा प्रकाशित दैनिक बुलेटिन 'मेला वार्ता' के लिए यह साक्षात्कार श्री रोहित कुमार ने लिया था। यह साक्षी है कि श्री जावड़ेकर का पुस्तकों व पठन के प्रति गंभीर अनुराग है।

रोहित कुमार

शिक्षा : एम. फिल् हिंदी, दिल्ली विश्वविद्यालय

संप्रति : साहित्यिक और सांगीतिक गतिविधियों में रुचि। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास (ने.बु.ट्र.), भारत द्वारा प्रगति मैदान में आयोजित नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेला 2017 में हिंदी बुलेटिन 'मेला वार्ता' के लिए संवाददाता के रूप में कार्य करने के अलावा हिंदू कॉलेज की वार्षिक पत्रिका 'इंद्रप्रस्थ' के लिए प्रधान संपादक के रूप में कार्य किया।

संपर्क : 9540331898

एक राजनेता होने के नाते किताबों से आपका क्या रिश्ता है?

किताबों से मुझे बहुत लगाव है। मैं मानता हूँ कि शिक्षा कॉलेज के साथ समाप्त नहीं होती, वह लगातार चलती है, इसलिए पढ़ना ही हमारी जिंदगी है। मैं रोज कुछ न कुछ किताबें लेकर उसका थोड़ा हिस्सा ही क्यों न हो, देखता जरूर हूँ...किताबों के बिना तो जिंदगी अधूरी है न!

आपकी पसंदीदा किताबें और लेखक कौन हैं?

मूलतः पहले मैंने मराठी में खूब पढ़ा और लिखा भी, बाद में हिंदी और अंग्रेजी भी पढ़ने लगा। प्रेमचंद जी से लेकर विघटनकारी विचारों वाले एल्विन टॅफलर, गुरुचरण दास से लेकर अंग्रेजी के सभी बड़े लेखकों के अलावा मराठी के सभी बड़े लेखकों जैसे रामगणेश गडकरी, खांडेकर, मंगेश पड़गाँवकर आदि के अलावा कविता, कथाएँ, कादंबरी, लेख, सभी कुछ, मराठी लेखकों के इतिहास और चरित्र दोनों मैंने पढ़े।

आपकी नजर में साहित्य और राजनीति का क्या संबंध है?

बहुत अच्छा संबंध है। दरअसल राजनीति भी एक लोककला है। मैं मानता हूँ, यह एक लोकेषणा है जिसमें आप लोगों से ही व्यवहार करते हैं। लोगों की भावनाओं को समझने के लिए साहित्य एक नई दृष्टि देता है जो जीवन को समग्र में यानी 360 डिग्री में देखने का काम करता है। सच्चाई यह है कि हम जिंदगी लोगों के साथ जीते हैं।

प्रेमचंद का जिक्र किया आपने। वे कहते थे कि 'साहित्य राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई नहीं, बल्कि राजनीति के आगे मशाल दिखाते हुए चलने वाली सच्चाई है'....

बिलकुल है, राजनीति तो जिंदगी का एक पक्ष है। जिंदगी के बहुत सारे पहलू हैं जिसमें अच्छा इंसान होना सबसे अहम पहलू है और अच्छे इंसान का नाता दूसरे लोगों से है, प्राणियों से है, सृष्टि से है। मनुष्य का सच्चा जीवन वही है जो इन तीनों से प्यार कर सके। जीवन को ऐसी दृष्टि देने में साहित्य बहुत मदद करता है। किताबें आपकी साथी हैं। इमरजेंसी के समय से ही मैं कहानियों को ड्रामैटिक स्टाइल में पढ़ता रहा हूँ।

भारत में पुस्तकोन्मुखी समाज बने इसके लिए आपकी भावी योजना क्या है?

'पढ़ो और आगे बढ़ो' यही हमारा नारा है। 'वाचे गुजरात' (पढ़े गुजरात) नामक कार्यक्रम चला था, उसी तर्ज पर हमने 'पढ़े भारत, बढ़े भारत' कार्यकम शुरू किया है। स्कूलों में पाठ्य-पुस्तक के अलावा भी पढ़ना चाहिए। बचपन में जब चार आने की कहानियों की किताबें आती थीं, मैंने पाँचवीं कक्षा के अपने सारे दोस्तों से एक-एक खरीदने को कहा और 250 किताबों की एक लाइब्रेरी बन गई। मैं वहाँ घंटों बैठा करता था। जब मैं चौथी में था तब राजाजी छत्रपति शिवाजी महाराज पर दसियों किताबें पढ़ीं और 100 पेज का उनका चरित्र लिखा था। मैं दूसरों के घर जा-जाकर दो-चार तरह के अखबार पढ़ा करता था। तो पढ़ना मेरी जिंदगी है।

इंटरनेट और डिजिटल लाइब्रेरी का जमाना आ गया है, ऐसे में पुस्तक मेलों का आयोजन आपको कहाँ तक प्रासंगिक लगता है?

आज हमारे पास 'नेशनल डिजिटल लाइब्रेरी' है जो सभी विश्वविद्यालयों की लाइब्रेरी को जोड़कर डिजिटली लाखों किताबें उपलब्ध कराती है। किंडल जैसी नई तकनीक से मुझे कोई आपत्ति नहीं है, उससे सुविधा है। एक स्लेट में आप हजारों किताबें रख सकते हैं। तो मैं इंटरनेट आदि का स्वागत करता हूँ, परंतु हाँ, पढ़ना चाहिए। ऑनलाइन, हार्ड कॉपी सब चलेगा। प्रवास के दौरान, गाड़ी में जब मैं किताबें ढो नहीं सकता, चलती गाड़ी में अक्षर हिलते हैं तब ऐसे में ऑडियो बुक मुझे बहुत पसंद है। आखिरकार लेखक का सम्मान हो और पढ़ने की आदत हो। तो सुनो या पढ़ो, दोनों महत्त्वपूर्ण हैं। पुराने जमाने में बुजुर्ग बच्चों से किताबें पढ़वाकर सुनते थे। तो मुझे सब मंजूर है, बस पढ़ना जारी रहना चाहिए।

इस बार विश्व पुस्तक मेले का थीम महिला लेखन पर केंद्रित है। इस पर आपकी कोई प्रतिक्रिया?

यह भी बहुत जरूरी है। आज से लगभग सौ-सवा सौ साल पहले महिलाओं की शिक्षा शुरू हुई। महात्मा ज्योतिबा फुले, सावित्री बाई फुले और डॉ. कर्वे के अलावा महाराष्ट्र में आर्य समाज और मठों ने स्त्री शिक्षा के प्रचार-प्रसार का काम किया। आज स्त्री यहाँ तक आई है तो महिला लेखन बहुत सशक्त और समृद्ध हुआ है। उनकी दास्ताँ को सुनना और पढ़ना चाहिए। मैं तो मानता हूँ कि साहित्य केवल मध्यम वर्ग की परिकल्पनाओं पर आधारित नहीं होता। जब समाज के सभी तबकों का चित्रण उसमें होता है तो वह ज्यादा सही होता है। साहित्य में आज अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर भी झुम्पा लाहिड़ी से लेकर तमाम लेखिकाएँ हैं जो भारत की अभिव्यक्ति हैं। तो मुझे लगता है कि 1000 साल मनुष्य जाति ने महिलाओं को न पढ़ाकर जो खोया, मैत्रेयी, गार्गी के शास्त्रार्थ को भुला दिया था, वह अब एक सामाजिक आंदोलन के रूप में पाने की कोशिश कर रहा है। यह बहुत महत्त्वपूर्ण है।

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास अपनी सेवा के 60 वर्ष पूरे कर रहा है। ऐसे में न्यास हो या पाठक, खासकर युवाओं को आप क्या संदेश देना चाहेंगे?

हम यह कहेंगे कि किताबों की दुनिया, एक नई दुनिया है जो जीवन का सही दर्शन कराती है। वहाँ विचारों का आदान-प्रदान होता है और इसीलिए बाकी मेलों में तो हम जाते ही हैं, किताबों के मेलों में जाना बहुत ही अच्छा है।

हमारे यहाँ महाराष्ट्र में 'अक्षर यात्रा' करके मोबाइल बुक फेयर चलता है...

(नेशनल बुक ट्रस्ट भी ऐसा ही करता है)

...तो बहुत अच्छा है। नेशनल बुक ट्रस्ट को बहुत-बहुत बधाई।

हिंदी को समर्पित : नलिनी मोहन सान्याल

देश के सभी ऋषियों-मुनियों, संतों, कवियों एवं तत्त्व शास्त्रियों ने वसुधैव कुटुंबकम् की परिकल्पना की है। इसी कारण भाषायी एवं भौगोलिक विविधताओं के बावजूद सांस्कृतिक एकता भारतवासियों को एक सूत्र में बाँधे हुए है। आपसी संपर्क के लिए एक भाषा की सदैव आवश्यकता रही।

आज तो हिंदी देश की राष्ट्रभाषा ही नहीं, अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी उसकी अलग पहचान है। विश्व के अनेक विश्वविद्यालयों में हिंदी का पठन-पाठन हो रहा है। हिंदी को संपर्क एवं पठन-पाठन तथा साहित्य सृजन की भाषा बनाने के लिए देश के विभिन्न क्षेत्रों की भाषाओं के शब्दों, शैलियों तथा अभिव्यक्तियों को आत्मसात् किया गया है। इस कार्य में अनेक प्रांतों के धर्माचार्य तथा संतों एवं कवियों का अवदान सम्मरणीय रहेगा। इस दिशा में कबीर, सूर, तुलसी, रसखान, मलिक मुहम्मद जायसी, जयदेव, विद्यापति आदि के अलावा केरल के ताजऊपर के शासक शाहाजी, आंध्र के नादेल्लुपुरुषोत्तम कवि, महाराष्ट्र के नामदेव तुकाराम, ज्ञानदेव, पंजाब के गुरुनानक, गुजरात के स्वामी दयानंद सरस्वती का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

हिंदी को देश में चतुर्दिक फैलाने का श्रेय संतों को है। उन्होंने सारे देश में भ्रमण कर इसके माध्यम से जन-जन तक अपने विचारों को पहुँचाया। पठन-पाठन के स्तर पर भी हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग; काशी नागरी प्रचारिणी सभा, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, मध्य भारत हिंदी साहित्य समिति आदि संस्थाओं का अवदान भी उल्लेखनीय है। परंतु विश्वविद्यालय के स्तर पर हिंदी को मान्यता दिलाने तथा उसके पठन-पाठन का पहला प्रयास 1919 में कलकत्ता विश्वविद्यालय के कुलपति सर आशुतोष मुखर्जी ने किया था। इस विश्वविद्यालय में एम.ए. (हिंदी) के छात्र के रूप में जिस अहिंदी भाषी छात्र ने प्रथम छात्र के रूप में प्रवेश लिया, वह व्यक्ति नलिनी मोहन सान्याल ही थे।

नलिनी मोहन सान्याल का जन्म 3 अक्तूबर, 1861 को बंगाल के नदिया जिले में शांतिपुर गाँव में हुआ था। इनके पिता हरिमोहन सान्याल राजपूताना लाइट रेलवे में कार्यरत थे।

उनका स्थानांतरण भी होता रहता था। फलस्वरूप नलिनी मोहन की प्रारंभिक शिक्षा को नियमित रखने के लिए इनके पिता ने इन्हें अलीगढ़ भेज दिया। तत्पश्चात् सान्याल ने आगे की पढ़ाई आगरा और दिल्ली में की। 1877 में आगरा कॉलेज से एंट्रेंस की परीक्षा पास की। उसके बाद 1880 में पटना विश्वविद्यालय से एफ.ए. किया। 1884 में कलकत्ता विश्वविद्यालय से संबद्ध कलकत्ता मेट्रोपॉलिटन कॉलेज (वर्तमान में विद्यासागर कॉलेज) से बी.ए. की परीक्षा में सफलता प्राप्त की। 1885 में कलकत्ता विश्वविद्यालय से वनस्पति शास्त्र में स्नातकोत्तर की डिग्री प्राप्त की।

शिक्षा समाप्ति के बाद ही नलिनी मोहन सान्याल को सरकारी विद्यालय में प्रधानाध्यापक के पद पर सीधे नियुक्ति मिल गई। इसके बाद वह टाकी, बैरकपुर, कृष्णानगर (बंगाल में) एवं पटना, गया (बिहार में) तथा हजारीबाग (झारखंड में) और अन्य स्थानों पर 18 वर्ष तक नियमित सेवारत रहे। इनकी विद्वता एवं कार्यशैली को देखकर सरकार ने इन्हें भारतीय शिक्षा सेवा का सदस्य (Member of Indian Education Service) बनाकर स्कूल इंस्पेक्टर के पद पर नियुक्ति दे दी। अतः बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा के डिवीजनल इंस्पेक्टर ऑफ कॉलेजेस पद पर 1918 तक सेवारत रहे। उसके पश्चात् सरकारी सेवा से अवकाश प्राप्त कर लिया।

नलिनी मोहन सान्याल 1918 में सरकारी सेवा से मुक्त तो हो गए पर सामाजिक सक्रियता से निष्क्रिय नहीं हुए। अवकाश ग्रहण करने के बाद कलकत्ता के विशुद्धानंद सरस्वती विद्यालय के अध्यक्ष पद को स्वीकार कर लिया। इसके साथ ओरिएंटल सेमिनरी एवं भवानीपुर के साउथ सबर्बन स्कूल में अध्यापन कार्य से जुड़े रहे।

अध्ययनशील एवं कर्म के पुजारी नलिनी मोहन सान्याल को खाली बैठना बिलकुल पसंद नहीं था। इसीलिए जब 1921 में कलकत्ता विश्वविद्यालय में स्नातकोत्तर स्तर पर हिंदी भाषा की पढ़ाई प्रारंभ हुई, तो सान्याल ने प्रथम अहिंदी भाषी छात्र में रूप में उसी वर्ष 58 की वय में प्रवेश लिया और 60 वर्ष की उम्र में एम.ए. (हिंदी) की परीक्षा में प्रथम श्रेणी के साथ प्रथम स्थान प्राप्त किया। उस समय तक विश्व के किसी भी विश्वविद्यालय में स्नातकोत्तर स्तर की हिंदी

राजेन्द्र परदेसी

शिक्षा : ए.एम.आई.डी., डी.लिट.,

भोजपुरी लोककथाएँ, सृजन के पथिक, शब्दों के संधान, हताश होने से पहले, दूर होते रिश्ते सहित 12 से अधिक पुस्तकों के लेखक।

संपर्क : 9415045584

की पढ़ाई की व्यवस्था नहीं थी। इस प्रकार नलिनी मोहन सान्याल हिंदी में प्रथम एम.ए. (हिंदी) बने तथा स्वर्ण पदक से सम्मानित होने का गौरव पाया। 82 वर्ष की उम्र में हिंदी में ही पीएच.डी. भी किया।

स्नातकोत्तर की उपाधि लेने के बाद नलिनी मोहन सान्याल ने कलकत्ता विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में सात वर्ष तक प्रवक्ता के पद पर भी रहकर अध्यापन कार्य किया। उस समय हिंदी में स्नातकोत्तर उपाधि के लिए वाराणसी, लखनऊ, इलाहाबाद, जबलपुर जैसे अनेक स्थानों के छात्र आते थे। इन्हें कामता प्रसाद गुरु और सीतापति दूबे जैसे अध्यापक पढ़ाते थे। ये लोग नलिनी मोहन सान्याल के शिष्य थे।

नलिनी मोहन सान्याल ने हिंदी में स्नातकोत्तर की उपाधि सरकारी नौकरी से अवकाश पाने के बाद भले प्राप्त की हो, परंतु हिंदी के प्रति लगाव और उसमें लेखन नौकरी करते समय भी कर रहे थे। सरकारी नौकरी की व्यस्तता के कारण चाहकर भी उतना समय नहीं

"नलिनी मोहन सान्याल ने हिंदी में अनेक ग्रंथों का सृजन किया। इनकी सर्वाधिक चर्चित एवं महत्त्वपूर्ण तथा ऐतिहासिक कृति, जो तुलनामूलक भाषा शास्त्र पर लिखी है, वह है—'तुलनामूलक भाषा विज्ञान की उपक्रमणिका'। यह भाषा विज्ञान की प्रथम प्रामाणिक पुस्तक है।"

दे पाते थे, जितना वह चाहते थे। लेकिन अवकाश मिलने के बाद लेखन की ओर गंभीरता से कार्य करने लगे। राजस्थान और उत्तर प्रदेश प्रवास के दौरान उन्होंने अरबी, फारसी और उर्दू का भी अध्ययन किया था। बाद में स्वाध्याय से फ्रेंच, जर्मन एवं ग्रीक आदि भाषाओं का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। हिंदी की बोलियों में मैथिली, भोजपुरी, मारवाड़ी आदि का भी गहन अध्ययन किया तथा उनके व्याकरण एवं रचना प्रक्रिया का गंभीरता से विश्लेषण किया।

नलिनी मोहन सान्याल ने हिंदी में अनेक ग्रंथों का सृजन किया। इनकी सर्वाधिक चर्चित एवं महत्त्वपूर्ण तथा ऐतिहासिक कृति, जो तुलनामूलक भाषा शास्त्र पर लिखी है, वह है—'तुलनामूलक भाषा विज्ञान की उपक्रमणिका'। यह भाषा विज्ञान की प्रथम प्रामाणिक पुस्तक है जिसे इलाहाबाद विश्वविद्यालय ने अपने पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया था। सान्याल की अन्य महत्त्वपूर्ण कृति है—दक्षिण भारत में तमिल भाषा में लिखी और वेद जैसी पवित्र मानी जाने वाली पुस्तक 'कुराल' का बंगला में किया गया अनुवाद जो 1937 में प्रकाशित हुई तथा तिरुवल्लुवर द्वारा प्रथम शताब्दी में की गई रचना का बंगला में अनुवाद। बंगला और हिंदी में समान अधिकार से लिखने वाले सान्याल की हिंदी में लिखी दूसरी महत्त्वपूर्ण पुस्तक है—'बिहारी भाषाओं की उत्पति और विकास'। यह इनका शोधग्रंथ भी है। जिसे सान्याल ने 82 वर्ष की उम्र में प्रस्तुत किया था तथा जो हिंदी भाषा के प्रथम शोधग्रंथ के रूप में मान्यता प्राप्त करने के साथ-साथ आगे के शोधार्थियों के लिए प्रेरणास्रोत व दिग्दर्शक भी बना।

नलिनी मोहन सान्याल का लेखन अपनी मातृभाषा में भी उसी गति से चलता रहा जिस गति से उन्होंने हिंदी में लेखन किया। बंगला में ऐतिहासिक चरित्रों को आधार बनाकर दो उपन्यास—'सुभद्रांगी' और 'कन्नकी'—लिखे। 'सुभद्रांगी' महान सम्राट अशोक की पत्नी के जीवन पर आधारित है जबकि 'कन्नकी' तमिल आदर्श चिलप्पदीकरम पर। इन कृतियों के अतिरिक्त सान्याल उस काल की हिंदी की चर्चित पत्रिकाओं में भी विभिन्न विषयों पर नियमित लिखा करते थे। जैसे—प्राकृत भाषा और संस्कृत भाषा (माधुरी), जीवों की विवर्तन (सरस्वती-1924), चरित्र (सुधा-1936), वस्तुजगत और भाव जगत (सरस्वती-1991), नवद्वीप (सरस्वती-1991), रवींद्र के काव्य में अतिंद्रीयता (उठान), ईश्वर का अस्तित्व विषयक सहज ज्ञान (कल्याण), समस्यामूलक सरस साहित्य (वीणा), शक्ति परिचय (आकर्षण), रवींद्र नाथ ठाकुर (कोशोत्सव,

काशी नागरी प्रचारिणी सभा) और सूरदास का काव्य और सिद्धांत (काशी नागरी प्रचारिणी सभा) आदि।

नलिनी मोहन सान्याल ने हिंदी और बंगला के अतिरिक्त महान महिला भक्त के जीवन एवं उनके उपासनामूलक भजनों को आधार बनाकर अंग्रेजी में 'मीराबाई' (Mira Bai) नामक ग्रंथ का सृजन भी किया। सान्याल की अंतिम कृति 'बानीर चरनेर' (अंतिम अर्घ्य) की भूमिका में महान दार्शनिक हीरेन्द्रनाथ ने लिखा है—'नलिनी मोहन सान्याल सिर्फ पंडित या विद्वान् ही नहीं है, ऐसा पंडा है जिसकी झोली में नाना प्रकार के मीठे फलों का प्रसाद भरा है।'

निष्कर्षतः यह कह सकते हैं कि नलिनी मोहन सान्याल हिंदी के उन साहित्य साधकों में से हैं जिन्होंने राष्ट्रभाषा के परिष्कार के लिए उर्दू शब्दों के बजाय अधिकतर संस्कृतनिष्ठ (तत्सम) शब्दों का प्रयोग किया है। यही हिंदी आज देश की प्रामाणिक राष्ट्रभाषा है।

नलिनी मोहन सान्याल संस्कृतनिष्ठ शब्दों का प्रयोग करने के साथ हर विषय पर सरल और सुबोध ढंग से पूर्ण अधिकार प्राप्त करने के बाद ही अपनी लेखनी चलाते रहते। विश्राम उनके जीवन का लक्ष्य ही नहीं रहा। जीवन के अंतिम क्षण 4 जुलाई 1951 तक उनकी लेखनी सतत् चलती रही। आज वह हमारे बीच नहीं हैं, पर हिंदी को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित करने में उनका अवदान अक्षुण्ण और अविस्मरणीय रहेगा।

प्रेम और शांति के विविध आयाम

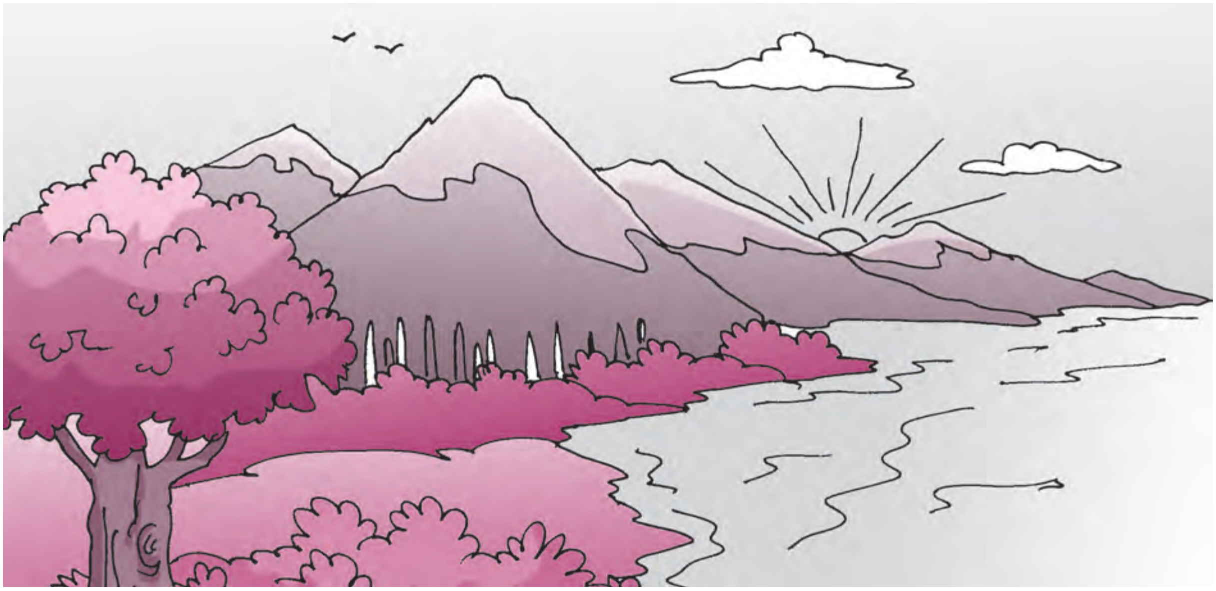

डॉ. स्वदेश भारती

पिछले पचास वर्षों से साहित्य-सृजन में सतत् सक्रिय श्री भारती 100 से अधिक पुस्तकों के लेखक हैं। जब वे 12 वर्ष के थे, तब उनकी कविता सुनकर राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने उनका नामकरण 'स्वदेश भारती' किया था। हालाँकि उनका जन्म उ.प्र. के प्रतापगढ़ जिले के रायगढ़ गाँव का है लेकिन वे सन् 1958 से कोलकाता में ही रह रहे हैं। वे पिछले चालीस सालों से प्रतिदिन एक कविता लिखते हैं। कई राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय मंचों से सम्मानित। **संप्रति :** अध्यक्ष, राष्ट्रीय हिंदी अकादमी, रूपांबरा, कोलकाता

संपर्क : 9903635210

मिल्टन ने कहा था—प्रेम अंधे की लाठी होता है। टॉल्सटॉय ने कहा था—प्रेम में झूठ का सहारा होता है। शेक्सपियर ने कहा था—सच्चा प्रेम वही है जो चाँदनी रात में ज्योति की तरह शांत, उज्ज्वल हो। प्रेमचंद ने कहा था—जीवन में प्रेम तभी सार्थक होता है जब उसमें सचाई हो। रवींद्रनाथ ने कहा था—प्रेम अंधकार में प्रकाश की तरह रास्ता दिखाता है। प्रेम हमारे जीवन को सुखमय, आनंदमय बनाता है। प्रेम एक बीज है जिसे मिट्टी में बोने पर वही छोटा-सा बीज वृक्ष बन जाता है। वृक्ष न पुरुषवाचक है, न ही स्त्रीवाचक। वृक्ष छाया देता है, फूल देता है, फल देता है और प्रारंभ होता है स्त्रीवाचक। वृक्ष सूख जाने पर लकड़ियाँ देता है। अग्नि वृक्ष को जलाती है, वर्षा सींचती है। हवा वृक्ष को दुलराती, सहराती है। पृथ्वी उसके भार को वहन करती है, अपने पाँव पर खड़ा होना सिखाती है। उसे नवजीवन, हरियाली प्रदान करती है। दिशाएँ उसे मार्गदर्शन देती हैं। इस तरह बीज को वृक्ष बनने में पाँच स्त्रीवाचक संज्ञाएँ तरह-तरह से सहायता करती हैं तब कहीं जाकर बीज बनता है वृक्ष। हरित-भरित सघन छाया देने वाला, फूल, फल, लकड़ियाँ देने वाला वृक्ष जिनसे मानव जीवन के विविध आयाम निर्मित होते हैं। अंकुर, पेड़, वृक्ष के लिए स्त्री मिट्टी है यानी जो पृथ्वी है, जो अंकशायिनी बनती है। वर्षा है, जो जलदान देती है। हवा है, जो प्राणवान करती है, अग्नि है, जो जलाती है और वृक्ष को राख बना देती है। राख दिशाओं में उड़कर छिन्न-भिन्न हो जाती है। यही सृष्टि के निर्माण और विघटन की प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया प्रेम के पाँच उपादानों से मूर्तरूप होती है, अपना अस्तित्व क्षार-क्षार करती है। इस पूरे ब्रह्मांड के सर्जन, विकास और विलुप्त होने का कारण बनती है। इस सारी प्रक्रियाओं में प्रेम का अस्तित्व नश्वर होता है। प्रेम ही सृष्टि के उद्भव और

विनाश को नया रूप देता है। प्रेम के बिना पृथ्वी पर चर-अचर जीव का अस्तित्व नहीं हो सकता। वृक्ष, जीवन और प्रेम में ढाई अक्षर होते हैं। वेद, मंत्र, ऋषि, सृष्टि, विश्व, राम, कृष्ण, शिव, राधा, सीता में भी ढाई अक्षर होते हैं जो प्रेम को दर्शाते हैं। सभी शब्द शाश्वत हैं, सृष्टि के निर्माण, नियमन, विकास, आनंद और सुख के आधार हैं। जीवन के समायोजक हैं। इस समायोजन में कर्म, धर्म के मर्म का रहस्य छिपा है। सांसारिकता के उत्स छिपे हैं। वेद के मर्म का यही रहस्य है, यद्यपि वेद के प्रत्येक मंत्र में कोई अंतिम समाधान नहीं है। किसी भी तर्क का शेष उत्तर नहीं है। वेद ज्ञान की प्रबुद्धता के श्रेष्ठ दर्शन हैं। जीवन के अध्यात्म का रहस्योद्घाटन, मंत्र-दर्शन कराते हैं जिससे कालचक्र की अवधारणा का विकास जुड़ा है।

प्रेम का संबंध मन, बुद्धि और हृदय से सीधा-सीधा है। इसमें चाह या चाहत जुड़कर उसे और भी सार्थक बना देते हैं। प्रेम में चाह

> **प्रेम के सात रूप होते हैं–पहला–माँ-बाप, भाई-बहन, सगे-संबंधियों का प्रेम जिसमें माँ का वात्सल्य सर्वोपरि होता है, दूसरा–पत्नी, प्रेयसी से प्रेम, तीसरा–वास्तु प्रेम, चौथा–सांसारिकता से प्रेम, पाँचवाँ–समष्टि से, समाज से प्रेम, छठा–अपने धर्म, ईश्वर से प्रेम और सातवाँ–निरंकार परब्रह्म परमात्मा से प्रेम या लगाव।**

और आह दोनों हैं। हृदय में उठ रही कसक और आकांक्षा का उच्छवास है। आनंद है। प्रेम से वंचित होने या प्रेम टूटने पर आह है। जिस तन्मयता से प्रेम होने का सुख हमारे भीतर-बाहर व्याप्त हो जाता है, अमर्यादित स्वभाव से प्रेम अभावग्रस्त होकर अपने संस्कार को खोता है। वह दुःखद स्थिति होती है। प्रेम भोग है और रोग भी है। प्रत्येक प्रकरण में जैसे प्रेम का विकास, वैभव, उल्लास, सुख-आनंद का उद्बोधन होता है, उसी क्रम में अन्यमनस्कता, प्रवंचना, तिरस्कार के कारण बिखराव का दुःख भोगना पड़ता है। प्रेम टिकाऊ नहीं होता। प्रेम को दीर्घजीवी, टिकाऊ और अक्षतिकारक बनाने के लिए हृदय का परिष्कृत होना जरूरी है। जो प्रेम शारीरिक भूख, संपत्ति की हविश शांत करने के लिए होता है, उसे कृत्रिम प्यार कहा जा सकता है। यूँ साधारणतः प्रेम के सात रूप होते हैं–पहला–माँ-बाप, भाई-बहन, सगे संबंधियों का प्रेम जिसमें माँ का वात्सल्य सर्वोपरि होता है, दूसरा–पत्नी, प्रेयसी से प्रेम, तीसरा–वास्तु प्रेम, चौथा–सांसारिकता से प्रेम, पाँचवाँ–समष्टि से, समाज से प्रेम, छठा–अपने धर्म, ईश्वर से प्रेम और सातवाँ–निरंकार परब्रह्म परमात्मा से प्रेम या लगाव। वास्तव में समय के साथ प्रेम की परिभाषाएँ बदलती रहती हैं। बहुत कुछ पुरुष-स्त्री मानसिकता पर निर्भर करता है कि वह कितना, किस प्रकार अच्छे से प्रेम को कर्तव्य मानकर प्रेम के विविध रूपों से प्रेम करते हैं। किंतु उस प्रेम में प्रवंचना, झूठ, फरेब, अविश्वास नहीं होना चाहिए। शारीरिक प्रेम से अधिक अर्थवान आत्मिक प्रेम होता है।

कृष्ण राधा से, राम सीता से, शिव पार्वती से आत्मिक प्रेम करते थे। इसे सीधे-सीधे इस प्रकार भी व्यक्त कर सकते हैं कि राधा, सीता, पार्वती, कृष्ण, राम और शिव की शक्ति रही हैं। इसके रहते हुए भी कृष्ण राधा को अलग कर वृंदावन-मथुरा से द्वारका चले गए। वहीं अपने लाव-लश्कर के साथ बस गए और अंतिम समय तक द्वारका में राज किया। राधा वृंदावन, बृज, बरसाने और नंदन कानन, कुंजवन में कृष्ण के वियोग में आत्म-विदग्ध विचरती रहीं। बिलखती रहीं। इसी तरह लंका से लौटने के बाद सीता ने रामेश्वरम् में सागर-तट पर सतीत्व की अग्नि परीक्षा दी, फिर भी अयोध्या लौटने के बाद एक धोबी के कटु-कटाक्ष पर आधी रात के अँधेरे में राम ने सीता को बीहड़ जंगल में छोड़ आने के लिए लक्ष्मण को आदेश दिया। वह अयोध्या के राजा का बड़ा फरमान, आदेश था, राम का नहीं, क्योंकि सीता तो राम के भीतर ही विराजमान थीं। अंतस्थ थीं। इस आध्यात्मिक तथ्य को शाश्वत प्रेम का रूप माना गया है। पृथ्वी पर आज भी ऐसे करोड़ों लोग हैं जिन्होंने पति-पत्नी के रिश्ते को लंबी उम्र तक निभाया है। परंतु तुरंत शादी, तुरंत तलाक, अलगाव की परंपरा ने भारतीय समाज को विकलांग बना दिया है। ऐसा क्यों है?

इस प्रश्न का कोई सीधा और साधारण उत्तर नहीं दिया जा सकता। जैसा कि प्रारंभ में कहा है कि प्रेम वह बीज है जिससे वृक्ष अपना स्वरूप ग्रहण करता है। जैसा बीज होगा, वैसा फूल, फल होगा। इसी तर्क को आधार मानकर यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि प्रेम ही बीज का जन्मदाता है। जैसा बीज वैसा प्रेम, जैसा प्रेम वैसा बीज। आधुनिक समाज में औद्योगीकरण और तकनीकी प्रगति ने जीवन को अत्यंत संकुचित बना दिया है। उसमें प्रेम के स्वातंत्र्य की बातें सोचना व्यर्थ है। क्योंकि आज प्रेम भी उपभोक्ता वस्तु बन गया है। बन क्या गया है, बना दिया गया है। प्रेम आवश्यकता के रूप में परिवर्तित हो गया है, अतः प्रेम का अर्थ भी बदल गया है। अब इस बाजारू सभ्यता में कोई कहे कि मुझे अमुक से प्रेम हो गया है तो बेमानी लगता है। प्रेम क्यों हो गया, कैसे हो गया, किस आधार पर हो गया, इन सभी बातों पर विचार करना आवश्यक है। अब जरा आप देखें–एक ही कोख में भाई-बहन का जन्म होता है। बहन को दाढ़ी मूँछ नहीं होती। हाथी, हथिनी एक परिस्थिति में पैदा हुए। परंतु हथिनी के बड़े दाँत नहीं होते, हाथी के होते हैं। मोर और मयूरी एक ही स्थिति में पैदा हुए लेकिन मयूर की पूँछ होती है, मयूरी की आधी पूँछ ही होती है। मुर्गा-मुर्गी एक ही परिस्थिति में पैदा हुए परंतु मुर्गी के सिर पर कलंगी नहीं होती, मुर्गे के सिर पर होती है। फ्रायड के विकासवाद के अनुसार क्रमिक विकास में प्राणियों के दाँतों में कोई मेल-जोल नहीं है। गाय, भैंस तथा नाना प्रकार के जानवरों, वन्य प्राणियों के विविध रूप होते हैं। अब जरा ध्यान दें– गाय, भैंस के ऊपरी दाँत नहीं होते किंतु घोड़े के नीचे-ऊपर दोनों जबड़ों में दाँत होते हैं। कुत्तों के ऊपर-नीचे के दाँत नुकीले और पैने होते हैं। दूध के

दाँत गिरते नहीं। घोड़े के स्तन नहीं होते, बैल के स्तन अंडकोष के पास होते हैं। बच्चा पैदा करते समय घोड़ी की जीभ बाहर गिर जाती है। स्याही जानवर के दस स्तन होते हैं परंतु चुहिया के आठ स्तन होते हैं। बिल्ली के छह स्तन ही होते हैं। गाय-भैंस के चार स्तन होते हैं। मनुष्य के दो ही स्तन होते हैं। यह जीवन का क्रमिक विकास है। अब और भी देखें— गाय, भैंस, शेर, चीता, हिरन आदि के एक ही रंग के बाल होते हैं, किंतु मनुष्य के बाल बाल्यकाल में सुनहरे, युवावस्था में काले, वृद्धावस्था में सफेद, अतिवृद्धावस्था, 80 वर्ष के बाद पिंगल रंग के हो जाते हैं। अब आप देखें कि पशुओं में तैरने की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है किंतु मनुष्य में नहीं। उसे तैरना सीखना होता है। पशु आड़े शरीर के, वृक्ष उल्टे शरीर के और मनुष्य सीधे शरीर के होते हैं। इसमें क्रमिक विकास फेल हो जाता है। वनस्पतियाँ गंदी चीजें ग्रहण कर बड़ी स्वस्थ, हरित-भरित होती हैं और शुद्ध वायु देती हैं, अच्छे फूल, फलादि देती हैं। मनुष्य को अच्छी पोषक वस्तुएँ चाहिए। अच्छी वायु चाहिए और गंदी हवा, कार्बन बाहर निकालते हैं। यदि पशु, पक्षी की आयु देखें तो क्रमिक विकास के अनुसार कछुए की उम्र 150 वर्ष, साँप की 120 वर्ष, कबूतर की 8 वर्ष होती है। मनुष्य की आयु अनिश्चित होती है। मनुष्य 'जीवेम शरदः शतम्' की अवधारणा लिए जीता है।

डार्विन के अनुयायी हेकल के अनुसार संसार को बने 8 लाख 20 हजार वर्ष हुए जबकि भूगर्भशास्त्री, वैज्ञानिक मानते हैं कि पृथ्वी की आयु 10 करोड़ वर्ष है। रेडियम की खोज करने वाले वैज्ञानिक प्रोफेसर पेरी ने खोज की कि पृथ्वी की आयु 10 करोड़ वर्ष से अधिक है। वेदों ने पृथ्वी की आयु अनंत काल कहा है। डार्विन के पुत्र जॉर्ज डार्विन ने 1905 में कहा कि जीवन एवं सृष्टि का रहस्य अब भी इतना अज्ञेय और गुप्त है जितना पहले था। भौतिकवाद की प्रगति भले ही वैज्ञानिकों को नई-नई तकनीकी की खोज से प्रसन्नता का अनुभव कराती हो परंतु आधुनिक विज्ञान की सबसे बड़ी खोज यही है कि वैज्ञानिक सृष्टि के उद्‌भव और विकास की अंतर्कथा और मूलतत्त्व को नहीं समझ पाए। नहीं खोज पाए। डार्विन का यह संदेश था कि यदि ईश्वर ने सृष्टि को बनाया है, मनुष्य को बनाया है तो उसके भीतर दया, ममता, करुणा होना आवश्यक है, जैसा कि आस्तिक लोग अध्यात्म का सहारा लेकर धर्म की व्याख्या करते हैं। फिर उस महाशक्तिमान ने दुःखमय संसार की क्यों रचना की? यदि ईश्वर ने जीवों को बनाया है तो फिर जीवन नित्य, अनादि, अज, परिवर्तनशील नहीं है। पुराने वस्त्र की जगह नए वस्त्र धारण करने की अवधारणा अनित्यवाद को नए रूप में परखने की ओर इंगित करती है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि ईश्वर ने संसार को प्रकट तो किया किंतु जीवात्माओं का नव निर्माण नहीं किया। जीव तो अनादिकाल से सृष्टि के प्रारंभ से हैं तथा मनुष्य अनंत कर्मों से बँधे हैं। ईश्वर ने उन्हें प्रकट किया जिससे वे अपने कर्म के अनुसार अपनी मुक्ति का प्रयास विविध रूपों में करते रहें। सृष्टि का सृजन ईश्वरीय कल्पना पर निर्भर करता है। सृष्टि का अर्थ ही है सृज विसर्गे अर्थात् त्यागना और सर्जित होना। जन्म का अर्थ भी यही है— शरीर त्यागना। इससे यह तय है कि जन्म और सृष्टि निर्माण के बोधक शब्द नहीं हैं। इससे यह भी सिद्ध होता है कि बिना ईश्वर के सृष्टि में व्याप्त अचेतन प्रकृति में नियमित एवं ज्ञानपूर्वक विकास संभव नहीं है। कुछ लोग कहते हैं कि ईश्वर चैतन्य है फिर उससे जड़ विश्व का निर्माण कैसे हो सकता है? सांख्य दर्शन के अनुसार ईश्वर को अकर्ता और अप्राकृत सिद्ध करने का एक विचार है। कुछ वेदांत ज्ञानियों का मत है कि काल ही सृष्टिकर्ता है। किंतु यह निर्विवाद सिद्ध है कि काल की उत्पत्ति ईश्वर द्वारा ही होती है। इस उत्पत्ति में प्रेम, करुणा, दया, मोह, माया का ताना-बाना होता है, परंतु प्रेम का दुःख या प्रेम में दुःख या प्रेममय दुःख की जो स्थितियाँ आज के संदर्भ में हमारे समाज में विद्यमान हैं, क्या प्रेम की वैसी ही स्थितियाँ 10 करोड़ वर्ष की सृष्टि के सर्जन और विसर्जन के बीच की हो सकती हैं? संभवतः नहीं। क्योंकि जीव का जो ढाँचा आज है वैसा पाँच हजार वर्ष पहले या बीच में नहीं रहा होगा। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो की खुदाई से भूगर्भ शास्त्रियों ने यह सिद्ध करना चाहा है कि उस काल में नागरिक सभ्यता थी। जीवन में सौंदर्य, संगीत, कला के विविध आयाम विद्यमान थे। और जहाँ भी ऐसी प्रवृत्तियाँ होती हैं वहाँ प्रेम का भी आधिपत्य होता है। भले ही वह प्रेम आज भिन्न हो, कुछ दूसरे किस्म का रहा हो। स्त्री और पुरुष उस काल में वल्कल वस्त्र पहनते थे, वनवासी वस्त्रविहीन होते थे। जंगलों में रहने वाले पुरुष-स्त्रियों में फैशन का चलन नहीं था। हो भी नहीं सकता था। जरा आप विचार करें कि प्रेम की क्या और कैसी स्थिति रही होगी? आज जो, जैसे और जिस तेजी से विकास हो रहा है, वैज्ञानिक, प्रौद्योगिक और औद्योगिक प्रगति हो रही है, जीवन की तेजी के साथ बदलती हुई प्रतिबद्धताओं, प्रतिश्रुतियों, प्रतिस्पर्धाओं और परिस्थितियों में प्रेम के आयाम भी बदलते जा रहे हैं। प्रेम बाजारू सभ्यता का एक प्रतिरूप हो गया है। प्रेम करना या मरना की स्थिति आ गई है। आज शादी करो, और दूसरे क्षण विच्छेद, तलाक, अलगाव की समस्या को भुगत रहा है आज का आदमी। दिमागी शांति के बिना वह कठोर, कठिन और कष्टकारक स्थितियों से जूझ रहा है।....यावत जीवेत, सुखम जीवेत, ऋणम कृत्वा घृतम पीवेत, भस्मी भूतस्थ देहस्य कुतः पुनर्जन्मना की मनः स्थिति वाली समाज रचना स्वतः ही निर्मित हो रही है, ऐसे में प्रेम का अर्थ जानना और मानना जरूरी हो गया है। हार्दिक संवेदना के बिना ऐसे में शांति विश्रृंखल, स्वच्छंद, सभ्यता से

> **"तीज-त्योहार, व्रत-पूजा से तौबा कर रही नारियाँ स्वच्छंदता की ओर बढ़ रही हैं। परंतु इस बदलाव से निस्तार की कोई गति नहीं है। पुरुष तो मांसल प्रेम को शरीर की क्रीड़ा मानकर आनंदित हो रहा है परंतु नारी अपनी आधुनिकता के जाल में फँसकर बिखराव की जिंदगी बिताने पर बाध्य है।"**

कटकर अलग-थलग रहने के लिए विवश है। अन्याय, अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष करने में अशक्त, निरुपाय, असमर्थ है, प्रेमाकांक्षा महत्त्वाकांक्षी योद्धा के चक्रव्यूह रचना की तरह होता है। अप्रेमकर्ता के पास आत्मबल होते हुए भी साधनविहीन होता, युद्ध करने में असमर्थ होता। जहाँ प्रेम जेहाद, प्रतिरोध की भावना से त्रस्त होता है, वह अपनी मंजिल तय करने, अभीष्ट पाने के लिए कुछ भी कर सकता है। अब तो ऐसी बीभत्स घटनाएँ होने लगी हैं कि प्रेम भी भयाक्रांत होकर भागने लगता है। प्रेम स्वार्थ का पर्याय हो गया है और सच्चा प्रेम बाजार की उपभोक्ता वस्तु हो गया है। अभावग्रस्त जीवन में प्रेम की परिभाषा बदल गई है। चाहे गाँव हो या शहर, आधुनिक फैशनपरस्त जीवन ने देख-दिखावा ग्रहण कर प्रेम को छायाच्छादित कर लिया है। वल्कल वस्त्र से शाया, फिर साड़ी, पैंट-कोट, चूड़ीदार-कुर्ता, घाघरा-चोली, घाघरा, छोटी पैंट, गंजी, टी शर्ट, बनियान, बिकनी, ऊँची एड़ी वाला बड़ा जूता, मुँह पर और शरीर भर में रंग-रोगन, बालों के नए-नए स्टाइल, फैशन, विदेशी नाक-नक्श, ठाठ-बाट। धीरे-धीरे नारी का रूप-रंग ही बदल गया है। उनके हजारों नए स्टाइल के सामने पुरुष टिक नहीं पा रहा है। ऐसे में प्रेम के बहुत सारे नए-नए मापदंड रहन-सहन की पद्धति को प्रभावित कर रहे हैं। धीरे-धीरे नारी पुरुष की जीवन शैली को बदल रही है जिसमें प्रेम के विविध रंग उभरकर पुरुष समाज को रंगीला बना रहे हैं। नारी की पुरानी अवधारणा ही बदल गई है और प्रेम उनकी अंगुली पकड़कर चलने वाले बालक की तरह हो गया है। ऐसे में मानसिक शांति के नाम पर अशांति का रुतबा रूप बदलकर समाज को प्रभावित कर रहा है। तीज-त्योहार, व्रत-पूजा से तौबा कर रही नारियाँ स्वच्छंदता की ओर बढ़ रही हैं। परंतु इस बदलाव से निस्तार की कोई गति नहीं है। पुरुष तो मांसल प्रेम को शरीर की क्रीड़ा मानकर आनंदित हो रहा है परंतु नारी अपनी आधुनिकता के जाल में फँसकर बिखराव की जिंदगी बिताने पर बाध्य है। भला कोई क्या करे? कैसे तनाव और चिंता से उसे मुक्ति दिलाए? ऐसे में ध्यान, योग, शांत वातावरण, विक्षोभहीन जीवन ही उसका उद्धार कर सकता है। इसके लिए आत्मनिर्भरता, साहस और आत्म नियंत्रण ढाल बनकर उसे सुरक्षित रख सकते हैं। प्रायः औरतों के बारे में ऐसा कहा जाते हुए सुना गया है कि प्रेम ईश्वर का वरदान है, बड़े भाग्य से प्रेम मिलता है। यहाँ पर यह कह देना आवश्यक है कि प्रेम के पात्रों के श्रेय का आदर्श, उसकी महत्ता, उसके प्रति ईमानदार होने की समझ पर निर्भर करता है। अन्यथा प्रेम का संसार ताश के पत्तों की तरह बिखर जाता है और मानसिक अशांति जीवन को खोखला बना देती है। कुछ हद तक प्रेम का बिखराव अशांति और दुःख का कारण होता है। यदि प्रेम जीवन प्रदान करता है तो मृत्यु का पर्याय भी बनता है। प्रत्येक युग-काल में प्रेम का स्वरूप और उसकी परिभाषाएँ बदलती रहती हैं। आदि काल से पृथ्वी पर कितने पाप, अत्याचार होते रहे। राजा और प्रजा का संबंध पानी के बुलबुले जैसा था। आज भी वैसी ही स्थितियाँ हैं किंतु संवेदना की प्रेरणा और प्रकृति बदली हुई है। प्रजातंत्र गडरियों और भेड़ों का समुदाय बन गया है। गडरिया जितना चालाक, चतुर होगा, भेड़ें उतनी ही सुशासित रहेंगी। जरा भी आँख ओट होते ही भेड़ें बिदक जाती हैं और अलग-थलग खेमों में बँटकर अपना गिरोह बना लेती हैं। इसमें मनुष्य की सत्ता-प्रवृत्ति को ही कारण माना जा सकता है। आज तक दुनिया में जितने भी युद्ध, महायुद्ध हुए, उसमें मनुष्य की भोग वासना वाली प्रवृत्ति, अहंकार, लोभ, क्रोध, मोह, छलावा का ही बोलबाला रहा। औद्योगीकरण, भौतिकवाद की इतनी तीव्रगति से विकास-यात्रा मनुष्य को कहाँ, किस ओर ले जाएगी, इसके बारे में कोई सुनिश्चित निष्कर्ष नहीं निकाल सकता। हाँ, यह जरूर है कि भौतिकवाद भौतिकवाद को ही समाप्त करना चाहता है। ऐसे में मनुष्य की भोगवादी प्रवृत्तियाँ कोई मायने नहीं रखतीं।

यूरोप, अमेरिका और प्रगतिवादी उन्नत पश्चिमी देश भी यह समझने लगे हैं कि औद्योगीकरण, भौतिकवाद से सुख-शांति प्राप्त नहीं हो सकती। भौतिकवाद से अंतःकरण में शांति स्थापित नहीं हो सकती। यदि ऐसा है तो भौतिकवाद से सुख-शांति की कल्पना करना व्यर्थ है। हालाँकि शारीरिक आवश्यकताओं के लिए भौतिकवाद जरूरी है, प्रेम जरूरी है। अशांति, मन की क्लांति और अस्थिरता को दूर करने के लिए भौतिकवादी उच्च तकनीकी प्राप्त दुनिया के श्रेष्ठ देश अब यह सोचने लगे हैं कि मनुष्य का लक्ष्य केवल भौतिकवाद नहीं है। मन और आत्मा की शांति के लिए अध्यात्म का सहारा जरूरी है। इसीलिए योग, ध्यान की साधना के लिए दुनिया भर के प्रबुद्ध लोगों का झुकाव बढ़ता जा रहा है। भौतिकता के अवगुणों से उन्हें यह ज्ञात हो गया है कि जीवन की सार्थकता भौतिकवाद से नहीं बल्कि अध्यात्मवाद से ही संभव है। योग कोई धर्म नहीं बल्कि शारीरिक स्वस्थता की वैज्ञानिक तकनीकी है जो शारीरिक स्वस्थता के साथ आध्यात्मिक प्रवृत्तियों की ओर आकर्षित करने का एकमात्र मार्ग है। योग-क्रिया प्रेम के सहज स्वरूप को सार्थक बनाने में सहायक होती है। व्यथित चित्त बिखरी मानसिकता को आदर्श जीवन के साथ जोड़ती है। प्रेम के बिना जीवन में शांति की कल्पना करना व्यर्थ है। चाहे व्यक्ति हो, समाज या राष्ट्र—प्रेम की अहमियत प्रत्येक कदम पर प्रासंगिक और जरूरी होती है।

दूसरा राजमहर्षि

अरुण अर्णव खरे

जन्म : 24 मई, 1956 को अजयगढ़, पन्ना (म.प्र.) में।

शिक्षा : भोपाल विश्वविद्यालय से मैकेनिकल इंजीनियरिंग में स्नातक।

संप्रति : लोक स्वास्थ्य यांत्रिकी विभाग से मुख्य अभियंता पद से सेवानिवृत्त।

कृति : कहानी और व्यंग्य लेखन के साथ कविता में भी रुचि। कुछ कहानियाँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। दो काव्य कृतियाँ– 'मेरा चाँद' और गुनगुनी धूप' तथा 'रात अभी स्याह नहीं' प्रकाशित। कतिपय सम्मान... इनके अतिरिक्त खेलों पर भी छह पुस्तकें प्रकाशित। भारतीय खेलों पर एक वेबसाइट www.sportsbharti.com का संपादन।

संपर्क : 9893007744

ई मेल : arunarnaw@gmail.com

शहर के लगभग सभी मुख्य चौराहों पर लगे राजमहर्षि के बड़े-बड़े होर्डिंग्स को जब भी अनुरीता देखती, उसके मन में एक ही खयाल आता कि कब उसका बेटा बड़ा होगा और वह उसकी तस्वीर इन होर्डिंग्स पर देखेगी। राजमहर्षि इस वर्ष का आई.आई.टी. टॉपर था। पहली बार शहर के किसी लड़के ने इतनी बड़ी सफलता हासिल की थी। अनुरीता का बेटा शौर्य अभी छोटा ही था और इस साल नौवीं में पढ़ रहा था। पढ़ने में वह भी बहुत होशियार था और अब तक किसी भी इम्तिहान में दूसरे नंबर पर नहीं आया था। इसी कारण अनुरीता अभी से उसको लेकर बड़े-बड़े सपने देखने लगी थी। उसने अपने मन की बात को शौर्य से छुपाना उचित भी नहीं समझा। वह सोचती थी कि शौर्य को अभी से प्रेरित करने के लिए उससे अपने मन की बात कह देना अच्छा रहेगा। एक दिन जब दोनों न्यू मार्केट से ऑटो में लौट रहे थे तो अनुरीता ने सेकेंड स्टॉप पर लगे होर्डिंग की ओर इशारा करते हुए कहा–"शौर्य... उधर देखो... एक दिन मैं भी तुझे वहीं पर देखना चाहती हूँ ...आज से तू दूसरा राजमहर्षि..."

"माँ, मेरा नाम शौर्य है।" अनुरीता का बेटा तुनक गया।

"हाँ बेटा ...तू शौर्य ही है, और होर्डिंग पर भी तेरा नाम ही लिखा होगा ...कुछ इस तरह से ...शहर का दूसरा राजमहर्षि ...शौर्य आनंद।" यह कहते हुए अनुरीता की आँखों में सौ कैंडिल पावर की चमक उभर आई, पर शौर्य के चेहरे से लग रहा था कि माँ का बार-बार उसे राजमहर्षि कहना पसंद नहीं आया था।

समय अपनी चाल चलता रहा। शौर्य ने नौवीं में भी टॉप किया। दसवीं के बोर्ड एग्जाम में उसे पूरे राज्य में तीसरा स्थान मिला। गणित में उसे पूरे सौ मार्क्स मिले थे। अनुरीता ने मानो दुनिया ही जीत ली। शौर्य से ज्यादा ऊँची उड़ान आसमान में भरते हुए अनुरीता को इंद्रधनुष अपने पैरों के नीचे दिखाई दिया। उसे पूरा विश्वास हो चला था कि शौर्य की तस्वीर एक दिन होर्डिंग्स पर जरूर जगमगाएगी। वह जब भी मौका मिलता, शौर्य को याद दिलाना नहीं भूलती। और तो और, उसने जाने-अनजाने कितने ही लोगों को इस बारे में बता दिया था। कुछ लोगों ने तो उसकी बातों पर ज्यादा ध्यान

नहीं दिया तो कुछ ने उसे— "हाँ...हाँ ...क्यों नहीं ...शौर्य तो बहुत होशियार लड़का है ... वह जरूर टॉप करेगा" जैसी बातें कर अनुरीता का उत्साह बनाए रखा। कुछ ने मन ही मन उस पर व्यंग्य बाण भी चलाए— "बहुत उड़ रही है अभी से ...देखना, एक दिन मुँह दिखाने से भी कतराएगी... ।"

अनुरीता की बेसब्री दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी। यह समय इतना धीरे-धीरे क्यों चल रहा है ...शौर्य तो अभी ग्यारहवीं में ही पढ़ रहा है ...दो साल और इंतजार करना है उसे अभी तो ...चौराहों पर करेगा" —अनुरीता के हाव-भाव से लग रहा था कि उसे रश्मि की बात पसंद नहीं आई।

"तुम तो बुरा मान गईं अनुरीता ...मेरा मतलब यह नहीं था" ...रश्मि ने कहा— "मैं तो केवल इतना कहना चाह रही थी ...कि शौर्य पर राजमहर्षि बनने का एक्स्ट्रा प्रेशर न बनाया जाए ...उससे अपेक्षा रखो लेकिन अपेक्षाओं का बोझ उस पर मत लादो..."

रश्मि और सरिता के जाने के बाद चाय के प्याले उठाते हुए अनुरीता बड़बड़ाती जा रही थी— "मुझे सीख दे रही है— मेरे बेटे से जलती हैं दोनों— रश्मि ने तो अपने बेटे को

> **"तुम तो बुरा मान गईं अनुरीता ...मेरा मतलब यह नहीं था" ...रश्मि ने कहा— "मैं तो केवल इतना कहना चाह रही थी ...कि शौर्य पर राजमहर्षि बनने का एक्स्ट्रा प्रेशर न बनाया जाए ...उससे अपेक्षा रखो लेकिन अपेक्षाओं का बोझ उस पर मत लादो..."**

लगे राजमहर्षि के पोस्टर भी धुँधलाने लगे थे, पर अनुरीता के मन में अंकित उसकी छवि अब भी वैसी दमक रही थी ...जैसी कोचिंग सेंटर के ऊपर लगे निओन लाइट वाले होर्डिंग में दमका करती थी।

उस दिन शौर्य अनुरीता पर बड़ा नाराज हुआ जब उसने सरिता और रश्मि आंटी से माँ को कहते सुन लिया था— "मैं बहुत बेसब्री से उस दिन का इंतजार कर रही हूँ जब मेरा शौर्य दूसरा राजमहर्षि बनकर इस शहर की हर गली में चर्चा का केंद्र बनेगा।" सरिता तिवारी और रश्मि सिन्हा अनुरीता की पक्की सहेलियाँ थीं और उस दिन मधु सुगवेकर की किटी पार्टी से लौटते हुए घर पर रुक गई थीं।

"अनुरीता ...हम सबकी इच्छा है, शौर्य ऐसी सफलता प्राप्त करे ...पर उस पर इसके लिए अभी से दबाव बनाना ठीक नहीं है।" —रश्मि आंटी ने कहा था।

"रश्मि ...मैं नहीं मानती तुम्हारी बात को ...शौर्य को पता होना चाहिए कि उसका लक्ष्य क्या है ...हम क्या सोचते हैं ...यदि उसे अभी से सचेत नहीं करेंगे तो फिर वह कैसे अपने उद्देश्य को समझेगा और उसे प्राप्त कॉमर्स दिलाया है— मैथ्स लेकर पढ़ पाना हरेक के बस की बात नहीं है— सरिता की बेटी तो और आगे जा रही है— उसे फाइन आर्ट्स से बेहतर कोई और विषय ही नहीं मिला —दिन भर कागजों पर रंग उड़ेलती रहती है... ।"

"माँ, मैं शिखर के यहाँ जा रहा हूँ— बहुत दिनों से टेबल टेनिस नहीं खेला है— एक घंटे में लौटूँगा—" कहते हुए शौर्य ने साइकिल बाहर निकाली और चला गया।

कुछ दिनों बाद शौर्य की बर्थ डे पार्टी में आए उसके दोस्तों— अनुज, मनीष और सौम्या से भी अनुरीता ने वही सब कह डाला— "देखना तुम लोग— शौर्य राजमहर्षि का रिकॉर्ड भी एक दिन तोड़कर दिखाएगा— सारे शहर में उसके पोस्टर्स लगे होंगे— ।" उस समय तो उन्होंने— "हाँ आंटी... आप सच कह रही हैं ...सर को भी शौर्य पर पूरा भरोसा है" कहकर अनुरीता के मन की बात कर दी, पर बाद में वे भी शौर्य को 'राज', 'राज' कहकर बुलाने लगे। सुनकर शौर्य तिलमिलाकर रह जाता ...माँ पर उसे गुस्सा भी बहुत आता ...पर उसे पता था कि माँ से कहने का कोई फायदा नहीं है। पापा की पोस्टिंग भुवनेश्वर में हो जाने के कारण वह दो माह में बमुश्किल चार-पाँच दिनों के लिए घर आ पाते थे। शौर्य से उनकी ज्यादा बात नहीं हो पाती थी— "पढ़ाई कैसी चल रही है—अपना व माँ का ठीक से ध्यान रखना—उनको परेशान मत करना—कोचिंग मिस मत करना—सात बजे तक घर आ जाया करो—"जैसे संवाद ही दोनों के मध्य होते थे।

शौर्य को भी राजमहर्षि अब चुनौती लगने लगा था। जब भी वह रिलेक्सिंग मूड में होता, बरबस ही राजमहर्षि के बारे में सोचने लगता ...यदि वह सचमुच राजमहर्षि नहीं बन पाया तो ...माँ तो टूट ही जाएगी ...कितना अपमानित महसूस करेगी वह ...सरिता और रश्मि आंटी कितने चटकारे ले-लेकर माँ की हँसी उड़ाएँगी। मेरे दोस्त भी मन ही मन बहुत खुश होंगे ...मनीष तो खास तौर पर, जिसने मेरा मजाक बनाने के उद्देश्य से पहली बार मुझे स्कूल में पीछे से 'ओए राज' कहकर पुकारा था और खिलखिलाकर उपेक्षापूर्ण ढंग से हँस दिया था। इसके बाद तो उसके क्लासमेट्स उसे इसी नाम से बुलाने लगे थे। कितना असहज हो जाता है वह यह नाम सुनकर ...शौर्य का अस्तित्व ही नहीं बचा हो जैसे।

इसी मानसिक उधेड़बुन में डूबता उतराता शौर्य अपने को बहुत अकेला महसूस करने लगा था। पढ़ने बैठता तो किताबों के बीच से निकलकर राजमहर्षि उसके सामने खड़ा हो जाता। कभी उसे लगता, राजमहर्षि पढ़ाई में उसकी मदद कर रहा है ...कठिन से कठिन सवाल वह चुटकी में हल कर लेता ... तो कभी उसे इसके उलट महसूस होने लगता जब आसान-से सवाल भी उसे उलझाकर रख देते ...ऐसे में उसे लगता, राजमहर्षि दूर खड़ा उस पर हँस रहा है। वह राजमहर्षि की इस पहेली से जितना दूर रहना चाहता था, वह उतना ही निकट आकर उसे अपनी गिरफ्त में ले लेती।

शौर्य ने स्वयं को स्कूल और कोचिंग तक ही सीमित कर लिया था। घर आने के बाद वह अपने को कमरे में बंद कर लेता और पढ़ने के लिए बैठ जाता। दो महीने से ऊपर

हो गए थे। वह न शाम को और न ही छुट्टी वाले दिनों तक में किसी दोस्त से मिलने गया था ...टेबल टेनिस खेलने का उसका शौक तो बहुत पीछे छूट गया था। टी.वी. देखे हुए भी उसे एक अरसा हो गया था—उसे न ही लाफ्टर शो में दिलचस्पी रह गई थी और न ही तारक मेहता का उल्टा चश्मा आकर्षित करता था। मोबाइल में भी उसने पिछले एक माह से एक बार भी नेट-पैक नहीं डलवाया था। अनुरीता बहुत खुश थी कि शौर्य उसके सपने के लिए कितनी जी तोड़ मेहनत कर रहा है। पढ़ाई में इतना खोया रहता है कि खाने के लिए नखरे करना भी भूल गया है ... लौकी और गिल्की की सब्जियाँ तक चुपचाप खा लेता है ...अनुरीता उसकी सेहत को लेकर चिंतित भी रहती ...उसे बीच-बीच में उसकी मनपसंद चीजें बनाकर खिलाती रहती, पर अनुरीता के मन में यह कभी नहीं आया कि वह शौर्य को कभी-कभी बाहर घूमने, दोस्तों से मिलने या थोड़ा-बहुत खेलने के लिए कहे।

ग्यारहवीं की स्थानीय परीक्षा में शौर्य पहले स्थान से खिसककर तीसरे स्थान पर आ गया। हमेशा खेलकूद में मस्त रहने वाले तन्मय चतुर्वेदी ने आश्चर्यजनक रूप से सातवें स्थान से छलाँग लगाते हुए टॉप किया था और सौम्या हमेशा की तरह दूसरे स्थान पर ही थी। शौर्य को पता था कि उसके पेपर्स उतने अच्छे नहीं गए हैं— हर पेपर में समयाभाव के कारण वह 5 से 10 अंकों के प्रश्न हल ही नहीं कर पाया था। पर अनुरीता शौर्य के रिजल्ट से ज्यादा विचलित नहीं थी—उसे लगता था कि आई.आई.टी. की तैयारी में अधिक ध्यान देने के कारण ही शौर्य पहले स्थान पर नहीं आ सका है।

रिजल्ट से शौर्य स्पष्ट है, खुश नहीं था। जीवन में पहली बार वह प्रथम आने से वंचित रहा था— और वह भी सीधे तीसरे नंबर पर जा पहुँचा था। तन्मय, जिसे कभी कोई बहुत सीरियस्ली नहीं लेता था, सीधा टॉप कर गया था। शौर्य को लगने लगा था कि उसके साथ सब कुछ ठीक नहीं है। उसकी याददाश्त उसका साथ नहीं दे रही है—कई बार आसान-से फार्मूले तक उसे समय पर याद नहीं आते और छोटे-छोटे सवालों को हल करने में भी उसे अधिक समय लग जाता है। वह किताबों में और ज्यादा दिमाग खपाने लगा—हर समय उसे लगता रहता कि राजमहर्षि उसके आसपास रहकर उसकी हर गतिविधि पर नजर रखे हुए है— कई बार तो वह देर रात तक कुर्सी पर बैठा इसी उधेड़बुन में खोया रहता कि कहीं राजमहर्षि उसकी राह कठिन बनाने के लिए कोई खेल तो नहीं खेल रहा—फिर उससे दूसरे ही क्षण उसे अपने पागलपन पर हँसने की इच्छा होती, लेकिन उसकी हँसी तो जैसे बहुत पीछे कहीं छूट चुकी थी। अधरों पर आने से पहले ही हँसी अंदर ही अंदर घुटकर दम तोड़ देती।

समय जैसे-जैसे बीत रहा था, शौर्य का आंतरिक डर बढ़ता जा रहा था— उसे अपनी असफलता का डर बुरी तरह सताने लगा था—किताबें खोलते ही अक्षरों के स्थान पर उसे अब राजमहर्षि के साथ-साथ रश्मि और सरिता आंटी के चेहरे भी दिखाई देने लगे थे—उसे लगता, ये सभी उसकी असफलता का जश्न मनाने इकट्ठे हो गए हैं। मनीष भी दूर से उसे कितनी अजीब और मजाक बनाने वाली निगाहों से देख रहा है—वह कितना खुश लग रहा है —लगता है उसे अपने फेल हो जाने का उतना दुःख नहीं पहुँचा है जितना उसके असफल हो जाने से उसे खुशी मिली है। इन सबके बीच माँ का उदास, पीला चेहरा देखकर उसका मन उसे धिक्कारने लगता—उसका मन होता कि तकिए में मुँह छुपाकर रो ले—पापा प्रकट होकर जरूर उसे ढाँढ़स बँधाते—अभी राह खत्म थोड़े हुई है—अगले साल और तैयारी से परीक्षा देना—अमिताभ बच्चन की वह सीख भी उसके मन-मस्तिस्क पर उभरती, जो उन्होंने टी.वी. पर किसी कार्यक्रम में दी थी—संभवतया कौन बनेगा करोड़पति में—"कोशिश करने वालों की कभी हार नहीं होती, लहरों से डरकर नौका पार नहीं होती।"

12वीं के इम्तिहान सिर पर थे लेकिन शौर्य इम्तिहान देने के लिए स्वयं को तैयार नहीं कर पाया था। आधे से ज्यादा कोर्स का वह रिवीजन ही नहीं कर सका। कई दिनों से उसके सिर में दर्द हो रहा था—नींद भी उसकी पूरी नहीं हो रही थी—साथ ही राजमहर्षि कभी भी अचानक आकर उसका रहा-सहा आत्म विश्वास हिलाकर चला जाता था।

पहला पेपर देकर वह वापस आ रहा था कि रास्ते में साइकिल से गिर गया। गिरते ही वह बेसुध हो गया। उसके दोस्तों ने उसे अस्पताल पहुँचाया और अनुरीता को खबर दी। उसका हीमोग्लोबिन गिरकर नौ रह गया था—वजन भी 54 किलो से घटकर 47 किलो रह गया था। अनवरत मानसिक तनाव की काली रेखाओं ने उसके चेहरे को मलीन बना दिया था। वह बिस्तर से उठ भी नहीं पा रहा था। अनुरीता इस स्थिति में अपने बेटे को देखकर सिहर गई—यदि सिस्टर ने उसे सँभाला नहीं होता तो वह नीचे गिर गई होती डॉक्टर ने शौर्य को कम से कम एक सप्ताह अस्पताल में रखने को कहा—उसे नींद पूरी न होने की वजह से सायकियाट्रिक एंड न्यूरोलॉजिकल डिस ऑर्डर हुआ था—अनुरीता तो जैसे यह सुनकर निढाल हो गई—उसे लगा किसी उपग्रह ने उसे बाँधकर अंतरिक्ष में ले जाकर छोड़ दिया है—राजमहर्षि के होर्डिंग के टुकड़े भी उसके साथ-साथ शून्य में घूम रहे हैं।

कविताएँ

अपना घर

अपना घर कितना अच्छा लगता है
परंतु जब व्यक्ति की बीमारी बढ़ जाती है
तब वह असहाय हो कहता है
तुम नर्सिंग होम में जाओ
यहाँ मैं तुम्हारे लिए
कुछ नहीं कर पा रहा हूँ
नर्सिंग होम में जैसे ही
व्यक्ति को चैन पड़ता है
लगता है घर बुला रहा है
घर लौटता है तो
घर असीम प्यार से उसे समेट लेता है
व्यक्ति को लगता है
कितने दिनों बाद घर आया है

आज

आज मिठाई की दुकान पर पहुँचा
तो देखा वह बहुत प्रसन्न थी
आज भी मैंने एक मिठाई खाई
तो दुकान प्रसन्न स्वर में बोली—
“यह भी लो, यह भी लो, यह भी लो
आज तुझे ढेर सारी मिठाइयाँ खिलाऊँगी”
मैंने कहा—
“तो उसका अंजाम मुझे भोगना होगा न”
वह उत्साह से बोली—
“चिंता मत करो दोस्त
देखो मेरी बगल में
नर्सिंग होम खुल गया है।”

रामदरश मिश्र

जन्म : 15 अगस्त 1924, गोरखपुर (उत्तर प्रदेश)

विधाएँ : उपन्यास, कहानी, कविता, निबंध, संस्मरण

सम्मान : व्यास सम्मान

संपर्क : आर-38, वाणी विहार, उत्तम नगर, नई दिल्ली-110059

www.ramdarashmishra.blogspot.com

सीमाएँ

घड़ा अपनी सीमाएँ समझता है
और गिलास में कलकल-कलकल
पानी डालकर
कितनों की प्यास बुझाता है
लेकिन सीमाबद्ध होकर भी
अपने को असीम समझने वाला सागर
उद्‌दंड भाव से शोर करता रहता है
पर किसी की प्यास
नहीं बुझा पाता।

केवल मैं

कल जब तुम अपने पाँव खड़ा होने का प्रयत्न
कर रहे थे
तब तुम्हारे साथ
केवल मैं था
जब तुम चलने लगे
तब धीरे-धीरे बहुत-से लोग
तुम्हारे साथ हो गए झुंड बाँधकर
और मैं तुम्हारी याद से ग़ायब हो गया
आज मैं फिर उस किसी के साथ हो गया हूँ
जो खड़ा होने की कोशिश कर रहा है।

उन्होंने कहा

उन्होंने कहा—
आपको शरम नहीं आती
बूढ़े हुए
किंतु बात-बात में हँसते-चहकते रहते हैं
नादान बच्चों की तरह
मुझे हँसी आ गई
और कहा—
आप ठीक कह रहे हैं श्रीमान्
मेरे भीतर एक बच्चा है
जो मुझे बूढ़ा नहीं होने देता
शरम तो आपको आनी चाहिए
कि जवानी में ही बूढ़े हो गए हैं
हँसना-खिलखिलाना छोड़कर
न जाने उदासी की किस दुनिया में
खो गए हैं।

आवाज़

आप किसी को कुछ दीजिए या न दीजिए
मगर राह में भटके हुए लोगों को
आवाज़ देते रहिए
ताकि अलग-अलग हो गए लोग
साथ-साथ चलने लगें
और एक सामूहिक हँसी से
रास्ता नहाता रहे
मंज़िल को भी लगे
कि उसकी ओर एक कारवाँ आ रहा है
ज़िंदगी से भरा हुआ।

चादर

कबीर दादा
तुम बहुत चमत्कारी थे
अपनी चादर
कभी मैली होने नहीं दी
अंत में ज्यों की त्यों उतार दी
मैं अपनी क्या कहूँ दादा
मेरे पास तो एक ही चादर है
उसे ही ओढ़ता-बिछाता हूँ
खेत में निकलता हूँ तो
खेत की मिट्‌टी लग जाती है
बरसात में वह कीचड़ से
सन जाती है
धूल भरी हवा चलती है
तो वह धूल से पट जाती है
फागुन में कीचड़ और रंग
आकर गिरते हैं इस पर
इसी में तरह-तरह के सामान बाँधकर
घर लाता हूँ तो उनके दाग पड़ जाते हैं
मेरे पास तो ज्यादा साबुन भी नहीं कि इसे धोता
रहूँ
अब तो वह इधर-उधर से फट रही है
माफ करना दादा
मैं अपनी चादर ज्यों की त्यों नहीं धर सका।

नरेन्द्र मोहन

जन्म : 30 जुलाई 1935, लाहौर।

एक प्रसिद्ध हिंदी कवि, नाटककार और आलोचक हैं, जो पंजाबी में भी लिखते हैं। उनकी कई कविताएँ और लेख 1954 और 1960 से आने शुरू हुए। वे साहित्यिक मंडलियों में अच्छी तरह जाने जाते थे। उन्होंने साहित्यिक पत्रिका 'संचेतना' को पाँच वर्षों (1969-73) तक संपादित किया।

शिक्षा : श्री मोहन ने पंजाबी विश्वविद्यालय से 1966 में आधुनिक हिंदी काव्य में अपना पीएच.डी. हासिल किया।

संप्रति : उनकी पहली नौकरी 1958 में खालसा कॉलेज, लुधियाना में हिंदी प्रवक्ता के तौर पर थी। इसके बाद उन्होंने पंजाब के विभिन्न कॉलेजों और पंजाब कृषि विश्वविद्यालय में प्रवक्ता और सहायक प्राध्यापक के रूप में कार्य किया। 1967 में एसजीटीबी खालसा कॉलेज, दिल्ली में आ गए और दिल्ली विश्वविद्यालय में रीडर, हिंदी (1988-2000) के पद पर रहे।

सम्मान : शिरोमणी साहित्यकार 1995; हिंदी अकादमी, दिल्ली पुरस्कार; भाषा विभाग, पंजाब द्वारा प्रथम पुरस्कार; शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा अखिल भारतीय पुरस्कार; हरियाणा साहित्य अकादमी पुरस्कार; भाषा विभाग, पंजाब द्वारा प्रथम पुरस्कार; हिंदी संस्थान, उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा प्रथम पुरस्कार; भाषा विभाग, पंजाब द्वारा प्रथम पुरस्कार; उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान द्वारा साहित्य भूषण सम्मान; हिंदी अकादमी, दिल्ली द्वारा साहित्यकार सम्मान।

संपर्क : 239-डी, एम.आई.जी., राजौरी गार्डन, नई दिल्ली-110027

दूरभाष : 25446902, 9818749321

ईमेल : nmohan1935@gmail.com

वह घर

परिंदे उड़ते चले जाते वहाँ
परिंदे उड़ते चले आते यहाँ
ज़मीनी-आसमानी सरहदें फलाँगते
चोंचें भिड़ाते
लड़ते-झगड़ते, प्यार करते
उड़ते चले जाते

एक परिंदा मेरे करीब आ चहचहाने लगा
'अरे यार, मुँह क्यों लटकाए हो
जहाँ जाना है जा, रहना है रह
भूल जाना इक नेमत मान और मेरी तरह उड़'

मैंने जैसे ही उड़ान भरी
एक गोली सनसनाती, चीरती निकल गई
और मैं नीचे गिरा लहूलुहान...

दूसरे परिंदे ने दर्दमंदी की धुन में कहा
'ओए लाहौरिए, देख ज़रा
छू आया हूँ तेरा घर
उस छत पर उड़ता रहा
जहाँ तू पतंग उड़ाता रहा'

मैंने इधर देखा
चोंच में डोर और पतंग बना परिंदा
और मैं बचपन में लौट गया
पतंग उड़ाता, पेंच लड़ाता
'वो' की ऊँची आवाज़ों के साथ

और महसूस करने लगा
उँगलियों में साँस लेता
वह घर
जो अब मेरा नहीं है

परिंदा

चुपके से आ बैठा
डाल पर
एक परिंदा
एक हिलोर में रोमांचित डाल
उड़ने लगी
आसमान में
परिंदे के साथ
डाल में परिंदा कि परिंदे में डाल
पता ही न चला
और मैं लौट आया
अनंत से
आरंभ में—
डाल पर परिंदे की तरह
और उड़ता चला गया
अनंत में!

वक़्त आ गया

वक़्त आ गया
अब क्या हो?
बदला वक़्त, जमाना बदला
बदली-बदली तस्वीरें हैं
अपनों में यह कौन 'दूसरा'
देख अचंभा होवे है
इंसानों की बस्ती है यह
मगर लगे हैवानों की
लूट-पाट क़त्लोग़ारत में
शहर लगें बेगाने हैं

डरे-डरे सहमे-से चेहरे
निडर न कोई दिखता है
सरेआम दहशतगर्दी है
भीतर पसरा सन्नाटा है
बीत गई उमराँ—
आ बैठा हूँ नदी किनारे
बाबा फरीद की देह कि मेरी
'कंबणि' लगी नये शब्द का राग छेड़ते वक़्त आ गया
अब क्या हो?

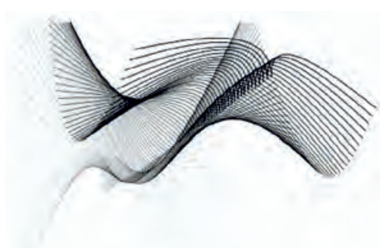

दु:खों का पेड़

कुछ दिनों पहले आप ने कुछ बीज दिए थे,
हर बार की तरह मैंने
उसे आप की अनमोल सौगात मानकर
सीने में रख दिए थे...

पाकर सीने की गर्मी व नमी
बीज की जड़ें हृदय में जमी
मैं खुश थी इस बार आपने
जो दिया वो बढ़ रहा है
दिन दूना, रात चौगुना हो रहा है
मगर मैं पगली, ये कहाँ समझ पाई
आपने तो हमें, दु:खों की सौगात भिजवाई...

आज वो दु:खों का अंकुर
एक वृक्ष में बदल रहा है
प्रति पल वक्ष में ही अपने
अस्तित्व को बढ़ा रहा है

निकल आई हैं आज उसकी
शाखाएँ-प्रशाखाएँ भी...
तलाश रही हैं वे जगह
बढ़ाने को अपना वजूद भी...

कुछ मेरे कानों और कुछ आँखों से
बाहर आ रही हैं
कुछ मेरे लबों पे खड़ी
मुस्करा रही हैं
मेरी सोच मेरे दिमाग पर भी
उन्होंने कब्जा जमा दिया है
अब इस दु:ख के अलावा मुझे
सोचने को और क्या रहा है...

दु:ख ही सुन रही हूँ...
दु:ख ही देख रही हूँ...
दु:ख ही सोच रही हूँ...
दु:ख ही कह रही हूँ...

मेरी तो छोड़िए जनाब
जो होना था हो गया आज
डरती हूँ, क्योंकि...
उन शाखाओं पर
अब फूल उग आए हैं...
उनमें आने वाले फलों के मुझे
दिख रहे गहरे साये हैं...
कल को जो भी इन्हें खाएगा
भविष्य में एक दुखी पेड़ बन जाएगा

सो मैंने उन फूलों को तोड़
सीने में छिपा लिया है...
अब ये पेड़, ये फूल
वक्त के साथ-साथ
मेरे सीने में दफन होते जाएँगे
मेरे साथ ये भी एक दिन
वक्त की बात हो जाएँगे...

आज मैं बहुत खुश हूँ
खुश हूँ इस बात पर कि
भले ही मैंने जग को खुशी का
एक बीज भी न दिया है
मगर दु:खों का पेड़ बनने से
मैंने उन्हें बचा लिया है...!!

दे दो वक्त जरा-सा...

कभी मिलो तो बतलाऊँ मैं,
तुमको अपने दिल का हाल...
कह न सकी जो तुमसे
कहा वो कोरे पन्नों से
कलम से बह के निकली जो स्याही
भावनाएँ बनती चली
उस श्वेत पथ की राही...
शब्दों के पथ और
मंजिल बदलती रही
भावनाएँ भी कागज पर
पिघलती रही,
सोचा...
ये बात तो बिलकुल नई है
तुमने अब तक सुनी नहीं है,
और
वो बात तो
अधूरी पड़ी है...
बीच राह में
अकेली खड़ी है...
और हाँ–
जिन बातों के अंकुर
अभी-अभी
दिल की जमीं पे फूट रहे हैं
उन्हें वक्त की खाद दे दो, वे
पल्लवित होने को मचल रहे हैं,
मेरी बातें खड़ी हैं आज भी
उसी राह पर...
छोड़ गए थे तुम अधूरी
बात जहाँ पर...
और वो स्वप्न
जो हमने मिलकर थे देखे,
ढूँढ़ना उन्हें भी
मिलेंगे वो बैठे किसी पेड़ के नीचे...
हमारे उस स्वप्न को तुम्हें
समर्पण का परिधान पहनाना है...
विश्वास के आभूषण से
उसे आज सजाना है...
बस...
दे दो वक्त जरा-सा कि,
तुम्हें दिल का हाल सुना जाऊँ...
जी रही हूँ कैसे तुम बिन
तुमको मैं समझा पाऊँ...!!

अनिला राखेचा

कोलकाता में रहने वाली युवा लेखिका की कुछ कविताएँ 'वागार्थ' में प्रकाशित हुई हैं।

संपर्क :

anila_rakhecha@outlook.com

हम पुस्तकों के डिजीटलीकरण पर कार्य कर रहे हैं

–डॉ. गोस्वामी

मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, मध्य प्रदेश शासन उच्च शिक्षा विभाग के अंतर्गत कार्यरत हैं। डॉक्टर सुरेन्द्र बिहारी गोस्वामी, जो अकादमी के संचालक हैं, के पिछले ढाई वर्षों के कार्यकाल में अनेक क्षेत्रों में नए कीर्तिमान रचे गए हैं। संस्थान की साख में वृद्धि होकर एक नई कार्य संस्कृति विकसित हुई है। अकादमी के टर्न ओवर में भी पिछले ढाई वर्षों में तीन गुना तक की वृद्धि हुई है। अकादमी द्वारा अनेक नवीन क्षेत्रों में पदार्पण किया जा रहा है। मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अंतर्गत कार्यरत संस्था 'भारत वाणी' से अनुबंध किया गया है। जिसके फलस्वरूप अकादमी द्वारा प्रकाशित समस्त पुस्तकें ऑनलाइन उपलब्ध हो जाएँगी। अकादमी द्वारा विक्रम संवत पर आधारित वार्षिक डायरी का प्रकाशन पिछले दो वर्षों से किया जा रहा है। ऐसा महत्त्वपूर्ण कार्य इससे पहले कभी नहीं हुआ।

सुदर्शन कुमार सोनी

शिक्षा : स्नातकोत्तर (रसायन शास्त्र)

कृति : तीन कहानी संग्रह व दो व्यंग्य संग्रह प्रकाशित। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के लिए लेखन।

संप्रति : मध्य प्रदेश शासन, पंचायत एवं ग्रामीण विकास विभाग में संयुक्त आयुक्त के रूप में भोपाल में पदस्थ।

संपर्क : 9425638352

'पुस्तक संस्कृति' का प्रयास है कि विभिन्न राज्यों में कार्यरत ग्रंथ व साहित्य अकादमियों द्वारा किए जा रहे कार्यों की जानकारी सुधी पाठकों व लेखकों तक पहुँचे, ताकि सभी जान सकें कि शासकीय संस्थाएँ 'सरकारी' नहीं बल्कि 'असरकारी' तरीके से काम करती हैं। इस शृंखला में प्रस्तुत है प्रख्यात मानस मर्मज्ञ और मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी के संचालक प्रो. सुरेन्द्र बिहारी गोस्वामी से चर्चित लेखक सुदर्शन कुमार सोनी द्वारा की गई बातचीत के प्रमुख अंश :

सुदर्शन कुमार सोनी– मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी ने क्या महत्त्वपूर्ण कार्य पिछले दो-तीन वर्षों में किए हैं, उनके बारे में बताना चाहेंगे?

डॉ. सुरेन्द्र बिहारी गोस्वामी– अकादमी ने अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य पिछले ढाई वर्षों में किए हैं जिनमें से प्रमुख हैं– भारत के संविधान की अंग्रेजी व हिंदी की द्विभाषी एक ही किताब प्रकाशित की है। जिसकी कीमत केवल 150 रुपये रखी गई है। यह किताब अनुसूचित जाति/जनजाति के लोगों को मात्र 90 रुपये में उपलब्ध है। सामान्य वर्ग के लोगों को भी 20 प्रतिशत की छूट है। इसके अलावा अकादमी ने दो साल पहले विक्रम संवत की डायरी वित्तीय वर्ष की गणना के आधार पर प्रकाशित करना प्रारंभ किया है। सिंहस्थ में इसका द्वितीय संस्करण उपलब्ध कराया है। आगामी वित्तीय वर्ष में इसका तृतीय संस्करण आ जाएगा।

उक्त पहल का सकारात्मक परिणाम यह हुआ है कि बैंक व अन्य संस्थाएँ अब अपनी वार्षिक डायरियाँ अकादमी के माध्यम

से मुद्रित कराने हेतु आगे आ रही हैं। जिससे अकादमी को अतिरिक्त आय होगी। पिछले वर्ष एक विक्रय काउंटर भी अकादमी परिसर में खोला गया है, जहाँ कोई भी व्यक्ति जाकर अपनी मनपसंद किताब खरीद सकता है।

एक नया प्रदर्शनी वाहन खरीदा गया है। अब अकादमी इसके लिए किसी बाह्य एजेंसी पर निर्भर नहीं है।

सुदर्शन कुमार सोनी– अनुसूचित जाति/जनजाति के विद्यार्थियों के लिए अकादमी की क्या योजना है?

डॉ. सुरेन्द्र बिहारी गोस्वामी– अकादमी द्वारा अनुसूचित जाति/जनजाति के विद्यार्थियों को उनके पाठ्यक्रम की किताबें पाँच संदर्भ किताबों के साथ निःशुल्क उपलब्ध कराई जा रही हैं। यह उपलब्धि इसलिए भी और उल्लेखनीय है कि प्रतिवर्ष डेढ़ लाख विद्यार्थियों को ये किताबें उपलब्ध कराई जाती हैं।

सुदर्शन कुमार सोनी– तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में अकादमी का क्या योगदान है?

डॉ. सुरेन्द्र बिहारी गोस्वामी– अकादमी द्वारा इंजीनियरिंग व कम्प्यूटर विज्ञान की बहुत-सी किताबें हिंदी में प्रकाशित कर आम हिंदी छात्रों को बड़ी राहत प्रदान की है। इंजीनियरिंग पाठ्यक्रम का पूरा सेट हिंदी में उपलब्ध कराया गया है। अकादमी की शीघ्र ही चिकित्सा विज्ञान की किताबें भी हिंदी में प्रकाशित करने की महत्त्वाकांक्षी योजना है। इस पर निरंतर कार्य चल रहा है।

सुदर्शन कुमार सोनी– ज्ञात हुआ है कि अकादमी शब्दकोश विकसित करने की भी योजना बना रही है।

डॉ. सुरेन्द्र बिहारी गोस्वामी– हाँ, आपने सही फरमाया। अकादमी हिंदी शब्दकोश विकसित करने पर काम कर रही है। वर्ष 2017-18 में जुलाई-अगस्त तक यह कार्य पूर्ण होने की पूरी संभावना है। यह बहुत बड़ी उपलब्धि होगी। सामान्यतः अकादमियाँ ऐसे शब्दकोश प्रकाशित नहीं करतीं।

सुदर्शन कुमार सोनी– आपके विचार में अकादमी की और उल्लेखनीय उपलब्धि क्या है?

डॉ. सुरेन्द्र बिहारी गोस्वामी– मध्य प्रदेश हिंदी अकादमी ने भारत सरकार, मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अंतर्गत कार्यरत 'भारतवाणी' से अनुबंध किया है। इसके फलस्वरूप अकादमी की सारी पुस्तकें ई-बुक्स के रूप में भी उपलब्ध हो जाएँगी। अकादमी द्वारा प्रकाशित पुस्तकों की संख्या लगभग 1200 है। किसी भी अकादमी द्वारा 'भारतवाणी' के साथ किया गया यह सबसे बड़ा अनुबंध है।

सुदर्शन कुमार सोनी– अकादमी की वर्तमान में स्वयं की वेबसाइट नहीं है, इसके बारे में क्या योजना है?

डॉ. सुरेन्द्र बिहारी गोस्वामी– स्वयं की वेबसाइट विकसित करने का कार्य प्रारंभ हो गया है। इसे हम शीघ्र गति देंगे। वेबसाइट विकसित करने के बाद सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि पुस्तक प्रेमी ऑनलाइन ऑर्डर कर पुस्तकें प्राप्त कर सकेंगे। इसमें ऑनलाइन भुगतान की भी सुविधा रहेगी।

सुदर्शन कुमार सोनी– अकादमी क्या प्रतियोगी परीक्षा के विद्यार्थियों के लिए भी कोई कार्य करती है?

डॉ. सुरेन्द्र बिहारी गोस्वामी– जी हाँ। अकादमी ने प्रतियोगी परीक्षाओं में सम्मिलित होने वाले विद्यार्थियों की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए 'सामान्य ज्ञान मध्य प्रदेश' व 'मध्य प्रदेश संदर्भ' जैसी महत्त्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित की हैं। इसके अलावा लोक सेवा आयोग से संबंधित पुस्तकों का भी प्रकाशन किया गया है। ये पुस्तकें प्रतियोगी परीक्षाओं में बैठने वाले छात्रों के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुई हैं।

सुदर्शन कुमार सोनी– अकादमी द्वारा शोध के क्षेत्र में कोई योगदान दिया गया है?

डॉ. सुरेन्द्र बिहारी गोस्वामी– परिसर में ही शोध केंद्र खोलने व उसे मान्यता प्रदान करने के लिए अकादमी कार्य कर रही है। शोधार्थी छात्रों के लिए पुस्तकालय शीघ्र ही खोला जाएगा। जिसमें वे यहाँ आकर अध्ययन कर सकेंगे। संदर्भ ग्रंथों का अवलोकन कर सकेंगे।

सुदर्शन कुमार सोनी– अकादमी परिसर में स्थित 'व्यक्तित्व विकास प्रकोष्ठ' पर प्रकाश डालें।

डॉ. सुरेन्द्र बिहारी गोस्वामी– अकादमी परिसर में एक 'व्यक्तित्व विकास प्रकोष्ठ' का गठन वर्ष 2014 में किया गया है। जिसके

राज्य समन्वयक अकादमी के संचालक ही हैं। इसके उद्देश्य निम्नानुसार हैं–

- भारतीयता का भाव-जागरण
- समर्थ नागरिक का निर्माण
- भारतीय संस्कृति के मूल्यों का अवगाहन
- व्यक्तित्व निर्माण एवं अनवरत संवर्धन
- भारतीय नैतिक मूल्यों का परिपालन एवं सृजन
- व्यक्तित्व विकास के विभिन्न आयामों की प्रविधियों पर संभाषण
- मनोविकारों से मुक्त मानस का निर्माण।

इसके माध्यम से विद्यार्थियों को भारतीय संस्कृति के बारे में अवगत कराया जाता है। उनके आत्मविश्वास और मनोबल में वृद्धि हो, प्रत्येक विद्यालय में ऐसे केंद्र स्थापित हैं, प्रत्येक माह में दो व्याख्यान इसके अंतर्गत आयोजित होते हैं। जिसमें विशेष रूप से विद्यार्थियों की पढ़ने की भावना विकसित करने, उनका सकारात्मक मानसिक विकास करने व डिप्रेशन जैसी कोई समस्या हो तो उसे दूर करने की दिशा में प्रभावी कार्य किया जाता है। उक्त प्रकोष्ठ के माध्यम से साढ़े छह लाख विद्यार्थी अभी तक लाभान्वित हो चुके हैं। यह एक बहुत बड़ी उपलब्धि है।

सुदर्शन कुमार सोनी– अकादमी की द्वैमासिक पत्रिका 'रचना' के बारे में प्रकाश डालना चाहेंगे।

डॉ. सुरेन्द्र बिहारी गोस्वामी– अकादमी द्वारा प्रकाशित 'रचना' द्वैमासिक को नया स्वरूप प्रदान किया गया है। इसमें शोधपरक व समसामयिक विषयों पर लेख प्रकाशित किए जाते हैं। इसकी लोकप्रियता बढ़ रही है तथा यह सारे देश में प्रसारित होती है।

सुदर्शन कुमार सोनी– लेखकों के लिए अकादमी की क्या विशेष योजना है?

डॉ. सुरेन्द्र बिहारी गोस्वामी– अकादमी द्वारा विभिन्न विषयों के लेखकों को निरंतर प्रोत्साहित किया जाता है। अनुसूचित जाति/जनजाति के लेखकों व प्राध्यापकों को विशेष रूप से आमंत्रित कर पुस्तक लेखन के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। इसके सकारात्मक परिणाम देखने में आए हैं।

अकादमी ने विभिन्न पाठ्यक्रमों के विभिन्न प्राध्यापकों से स्तरीय किताबें लिखने का आह्वान किया है। ये किताबें अकादमी की समिति द्वारा अनुमोदित होने पर प्रकाशित की जाती हैं। संदर्भ ग्रंथों, विशेष रूप से विज्ञान व अध्यात्म से संबंधित, को अकादमी द्वारा विशेष प्रोत्साहन दिया जाता है।

सुदर्शन कुमार सोनी– सिंहस्थ उज्जैन में अकादमी की क्या विशेष उपलब्धि रही?

डॉ. सुरेन्द्र बिहारी गोस्वामी– सिंहस्थ उज्जैन में अकादमी द्वारा 'विमर्श गोष्ठी' का आयोजन कर तीन हजार से अधिक युवाओं को इसमें जोड़ा गया। इसके अलावा विक्रम संवत पर आधारित अकादमी द्वारा छपवाई गई डायरी का वितरण साधु-संतों को किया गया।

सुदर्शन कुमार सोनी– संत परंपरा के संबंध में अकादमी द्वारा क्या प्रयास किए गए?

डॉ. सुरेन्द्र बिहारी गोस्वामी– भारत की संत परंपरा व सामाजिक समरसता के नाम से संदर्भ ग्रंथ अकादमी द्वारा प्रकाशित किया गया

है। जिसे अनुसूचित जाति/जनजाति के प्रत्येक विद्यार्थी को उपलब्ध कराया गया है। इसके अलावा 'व्यक्तित्व विकास के विभिन्न आयाम' नामक पुस्तक तथा डॉ. भीमराव अंबेडकर, स्वामी विवेकानंद, महात्मा गाँधी से जुड़ी हुई किताबें संदर्भ ग्रंथ के रूप में उपलब्ध कराई गई हैं।

सुदर्शन कुमार सोनी– अकादमी की अन्य उपलब्धियों पर प्रकाश डालें।

डॉ. सुरेन्द्र बिहारी गोस्वामी– भारत सरकार के वैज्ञानिक व तकनीकी शब्दावली आयोग, जिसकी गुजरात में आयोजित बैठक में देश में चार क्षेत्रीय कंसोर्टियम स्थापित करने का निर्णय हुआ था। जिसमें से एक कंसोर्टियम अकादमी में स्थापित करने पर सहमति दी गई है। यदि यह कंसोर्टियम अकादमी में स्थापित होता है तो पूरे मध्य प्रदेश के लिए गौरव की बात होगी।

पिछले ढाई वर्षों में अकादमी का टर्नओवर लगभग तीन गुना हो गया है। पिछले वर्ष यह लगभग 15 करोड़ था जिसके अब 20 करोड़ पार करने की पूरी संभावना है।

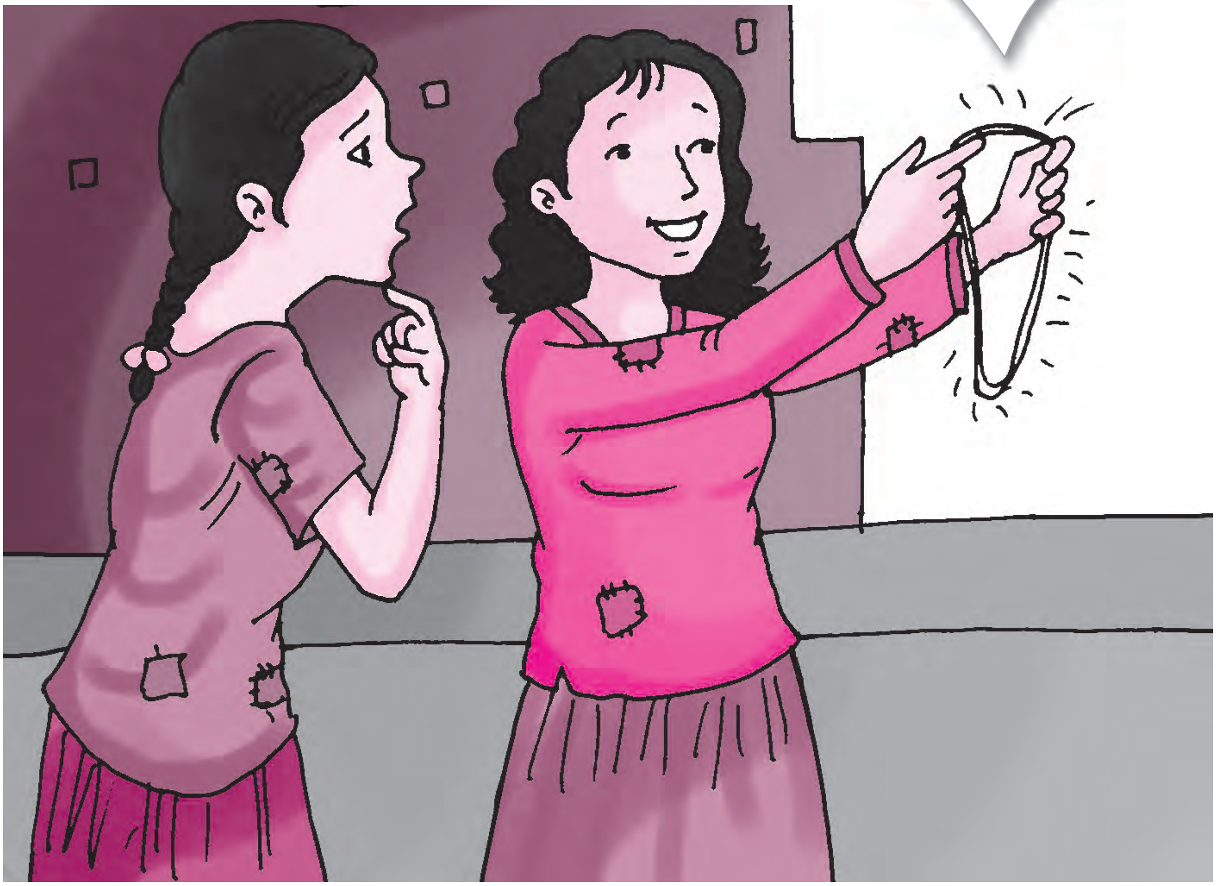

मृदुला श्रीवास्तव

शिक्षा : एम.ए. हिंदी, मास्टर ऑफ मास कम्युनिकेशन, पुस्तकालय विज्ञान और उर्दू में डिप्लोमा।

कृति : विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के लिए नियमित लेखन, कहानियाँ, आकाशवाणी। अखिल भारतीय निबंध लेखन प्रतियोगिता में संसदीय कार्य मंत्रालय द्वारा पुरस्कृत।

संप्रति : उपप्रबंधक (राजभाषा), एसजेवीएन लिमिटेड न्यू शिमला, शिमला (हि.प्र.)

संपर्क :
ई-मेल : srivastava1464@yahoo.co.in

मुलम्मा

मैले-कुचैले कपड़ों में लिपटी, रूखे-बिखरे और तेल की प्यास से तड़पते बालों वाली तंगम्मा पलक झपकते ही कभी सड़क के इस पार की झोंपड़ी में, तो कभी सड़क के उस पार पहुँच जाती।

तंगम्मा ने तीन महीने पहले एक ठेले वाले से पीली पॉलिश वाली माला खरीदी थी, जिसे सोने की समझकर वह फूली नहीं समाती थी। उसकी सहेली सेल्वी ने समझाया था— "तंगम्मा, यह माला सोने की नहीं है। पहले महीने यह सोने की रहेगी, दूसरे महीने चाँदी की निकल आएगी और फिर तीसरे महीने गिलेट की। इस पर सिर्फ सोने जैसे रंग का मुलम्मा चढ़ा है।" पर तंगम्मा कब मानने वाली थी। उसने माला खरीद ली।

तंगम्मा की उम्र यही कोई सत्रह-अट्ठारह वर्ष की रही होगी। स्वभाव से बेहद चंचल, मृगनयनी तंगम्मा चौदह साल से अधिक नहीं लगती थी। घर में अम्मा, अप्पा, दो छोटे भाई और सबसे प्यारी अक्का (बड़ी बहन) तेनम्मा थी।

तेनम्मा बीस साल की रही होगी शायद। तंगम्मा का पिता पिछले बाईस साल से मद्रास महानगर के अन्ना नगर के हॉस्टल के बाहर नारियल पानी बेचने का धंधा किया करता था। मगर उन दिनों खाट से लगा हुआ था। तंगम्मा की माँ और बड़ी बहन तेनम्मा

उमंग और उत्साह क्या होता है, इससे उन्हें कोई सरोकार नहीं था। तंगम्मा की झोंपड़ी से करीब तीन-चार कि.मी. दूर डॉ. त्यागराजन की कोठी थी। त्यागराजन ने पिछले साल ही यह कोठी बनाई थी। पत्नी अपंग थी और दो लड़कों के साथ विशाखापट्टनम में रहती थी। मतलब त्यागराजन अकेला ही वहाँ रहता था। अकसर डॉ. की कार उसकी झोंपड़ी के आगे से निकलती थी। उसकी अक्का, अम्मा के साथ मल्लिपू (फूलों के गजरे) बनाकर बेचा करती थीं। दो जून की रोटी लायक जुगाड़ तो हो ही जाता था।

तंगम्मा के पिता ने कई बरस पहले मद्रास की संभ्रांत कॉलोनी अन्ना नगर में अवैध रूप से हॉस्टल के नजदीक यह झोंपड़ी बनाई थी जिसमें यह छह प्राणी रह रहे थे। वैध रूप से बनी कोठियों में सफेदपोश संभ्रांत लोग रहते थे और इन अवैध बनी झोंपड़ियों में तथाकथित गिलेटनुमा लोग रहते थे। यह बात दूसरी थी कि बेकारी, भुखमरी से संतुष्ट नब्बे फीसदी गिलेटनुमा लोग गिलेटनुमा ही रहना पसंद करते थे। जबकि कंक्रीट के बँगलों में रहने वाले, सोने-से दिखते भले ही थे पर गिलेट होने की ताक में ही लगे रहते थे।

तंगम्मा ने जब से होश सँभाला तब से देख रही थी। हर साल मानसून आते ही उसकी माँ परेशान हो उठती है। चौबीस घंटे लगातार बारिश होती थी। देखते ही देखते आसपास बनी झोंपड़ियाँ पानी में डूबने लगती थीं। तब सारे मर्द लोग इधर-उधर बन रहे मकानों की ईंटें और बजरी रात के अँधेरे में झोंपड़ी के आगे डालते और आने-जाने का रास्ता बनाते थे। सबकी आँखें बारिश के रुकने की प्रतीक्षा करतीं। मानसून आने की वहीं झोंपड़ी के आगे दूसरी लड़कियों के साथ टोकरी रखे गजरे बनाने में व्यस्त रहती थी।

तंगम्मा ने कई बार न चाहते हुए भी यह देखा कि डॉक्टर पहले एक-आध बार, फिर रोज ही और फिर दिन में तीन-चार बार अपनी कार तेनम्मा की टोकरी के बिलकुल पास रोकता, प्यार भरी नजरों से देखने की कोशिश करता और कभी बीस का, कभी पचास का नोट उसकी टोकरी में डाल देता। देखते ही देखते तेनम्मा की टोकरी के मुसेमुसाए, मुरझाए गजरों का बंडल डॉ. की कार में पहुँच जाता। तंगम्मा वहीं पास में कभी गिट्टे खेलते हुए, कभी रस्सी कूदते हुए अकसर यह नजारा देखा करती थी। तंगम्मा को उस काले लंबे-से, बड़ी-बड़ी मूँछों वाले, डॉ. की डरावनी-सी लाल-लाल शराबी आँखों में प्यार नाम की कोई चीज नजर नहीं आती थी। पर तेनम्मा...। तेनम्मा तो उसके कार से उतरते ही लाज की लालिमा से भर उठती थी। तंगम्मा अकसर सोचती कि उसके तो घर में कोई औरत भी नहीं जो यह गजरे लगाती हो। फिर शायद पूजा के लिए खरीदता होगा। पर दिन में कितनी बार पूजा करता होगा। इतना धार्मिक भी नहीं दिखता। खैर, वह अपने मन को किसी तरह समझा देती।

ऐसा नहीं था कि उसकी माँ यह सब समझ नहीं रही थी। माँ ने तेनम्मा को समझाया भी था– "देख तेनम्मा– तुम्हारा इस तरह डॉक्टर को देखकर मुस्कराना और उसका तुम से ही फूल खरीदना मुझे पसंद नहीं है।" पर तेनम्मा धीरे से बोली, "माँ, मैं क्या करूँ? अगर डॉक्टर को मैं और मेरे ही फूल पसंद आते हैं? और फिर माँ! डॉक्टर सोने जैसा खरा इंसान है। मुझे अच्छा लगता है।" माँ चुप हो गई। क्या बोलती? जानती थी, डॉक्टर की बदौलत बीस-पचास की कमाई रोज हो जाती है। तंगम्मा ने एक दिन देखा, डॉक्टर कार से उतरा, उसने सिर्फ एक गजरा खरीदा और वहीं तेनम्मा की चोटी में

"त्यागराजन ने अपनी कार के काले शीशे नीचे किए। आँखों ही आँखों में तेनम्मा से कुछ कहा। तेनम्मा ने माँ से आज्ञा माँगी। माँ की नजरें एक साथ तंगम्मा, बेटों की गड्ढों में धँसी आँखें, बीमार पति, खाली लुढ़कते-पुड़कते बर्तनों और गीले चूल्हे से होती हुई तेनम्मा को कब डॉक्टर के साथ जाने की स्वीकृति दे गईं, पता ही नहीं चला।"

लगा दिया। तेनम्मा, जो रोज फूल बेचती थी पर खुद न जाने कब से गुँथा हुआ गजरा लगाने को तरस रही थी। उसे लगा कि जैसे डॉक्टर ही उसके सपनों का राजकुमार है। यह बात दूसरी थी कि उसके सपनों का राजकुमार उम्र में उससे बीस बरस बड़ा था। तंगम्मा को डॉ. की लाल-लाल आँखों में पहले से ज्यादा आग भड़कती दिखाई दे रही थी, पर तेनम्मा इन सबसे बेखबर थी। डॉक्टर, तेनम्मा की चोटी में रोज फूल लगाने लगा। एक दिन तेनम्मा का ध्यान अपनी माला पर गया। माला तो चाँदी जैसी सफेद हो गई थी।

उस दिन बारिश रुकने का नाम नहीं ले रही थी। उसका पिता मंडी से फूल खरीदने नहीं जा पाया था। एक तो बीमार और ऊपर से मूसलाधार बारिश। नारियल के पत्तों से बनी उनकी झोंपड़ी की छत डरावनी आवाज के साथ खड़खड़ा उठती थी। समुद्री तूफान की वजह से बारिश रुकने का नाम नहीं ले रही थी। दो दिन से घर में चूल्हा नहीं जला था। चूल्हा गीला होकर टूट गया था। चारों तरफ बस पानी ही पानी।

दोनों छोटे भाइयों को समेटे हुए तंगम्मा की माँ की आँखें कभी कोने में पड़े हुए खाली, नाचते बर्तनों की ओर उठकर गिरतीं, तो कभी दर्द से कराहते हुए अपने पति की ओर। तभी अचानक पानी को चीरकर आने वाली कार की आवाज से सभी का ध्यान हटा। तंगम्मा उठकर देखती, इससे पहले ही तेनम्मा ने झट से टूटे छप्पर से बने दरवाजे को थोड़ा-सा उचकाकर उठाया और बाहर झाँका। त्यागराजन ने अपनी कार के काले शीशे नीचे किए। आँखों ही आँखों में तेनम्मा से कुछ कहा। तेनम्मा ने माँ से आज्ञा माँगी। माँ की नजरें एक साथ तंगम्मा, बेटों की गड्ढों में धँसी आँखें, बीमार पति, खाली लुढ़कते-पुड़कते बर्तनों और गीले चूल्हे से होती हुई तेनम्मा को कब डॉक्टर के साथ जाने की स्वीकृति दे गईं, पता ही नहीं चला। तेनम्मा कार में चली गई। तंगम्मा का चेहरा तमतमा उठा।

उस दिन तेनम्मा सारी रात घर न आई। किसी को चिंता न थी। माँ को भी नहीं, सिर्फ तंगम्मा देर रात तक अपनी अक्का का इंतजार करती रही। फिर उसकी कब आँख लग गई, उसे पता ही नहीं चला। सुबह नींद किसी के रोने की आवाज सुनकर खुली। उसने देखा, तेनम्मा का ब्लाउज फटा हुआ था। बाल बिखरे हुए थे। गर्दन पर नाखूनों के निशान थे। तंगम्मा को समझते देर नहीं लगी। वैसे भी वह समय से पहले समझदार हो गई थी। उसने देखा, उसके दोनों भाई और पिता तेनम्मा के लाए केले के पत्ते में बँधे पैकेटों को खोलकर चिकन बिरयानी खाने में व्यस्त थे। बीच-बीच में छीना-झपटी करते हुए वे एक-दूसरे को मारते भी जाते थे।

माँ तेनम्मा को प्यार से 'चुप हो जा, कोई बात नहीं' कहकर चुप करा रही थी। जैसे उसे पता हो, यही होना था। पर तंगम्मा के लिए 'कोई बात नहीं' जैसे शब्द शायद इतने सस्ते न थे।

सोने की चीज जब गिलेट की निकल आए तो उसे फेंक देना ही बेहतर होता है। तंगम्मा ने आव देखा न ताव, अपने पिता का नारियल काटने का गँडासा उठा लिया। ऐसा करते ही तेनम्मा चिल्लाई, "नहीं तंगम्मा, नहीं, ऐसा मत करना। डॉक्टर सोने जैसा खरा इंसान है। ये बड़े लोग हैं। इनसे दुश्मनी मोल लेना ठीक नहीं। हम गरीबों की यही नियति है।" कहते-कहते वह फूट-फूटकर रोने लगी। तंगम्मा ने अपना हाथ छुड़ाते हुए चीखकर कहा– "नहीं अक्का, डॉक्टर सोने का नहीं रहा, वो गिलेट का निकल आया है।"

तंगम्मा ने अपनी माला तोड़कर फेंक दी। सोने जैसे मुलम्मे वाली उसकी माला सचमुच गिलेट की थी। माला पर पैर रखते हुए वह तेजी से डॉक्टर की कोठी की ओर गँडासा हाथ में लिए पानी में छपाक-छपाक की आवाज करते बढ़ चली। बारिश अभी भी रुकने का नाम नहीं ले रही थी।

तंगम्मा मंद-मंद मुस्करा रही थी।

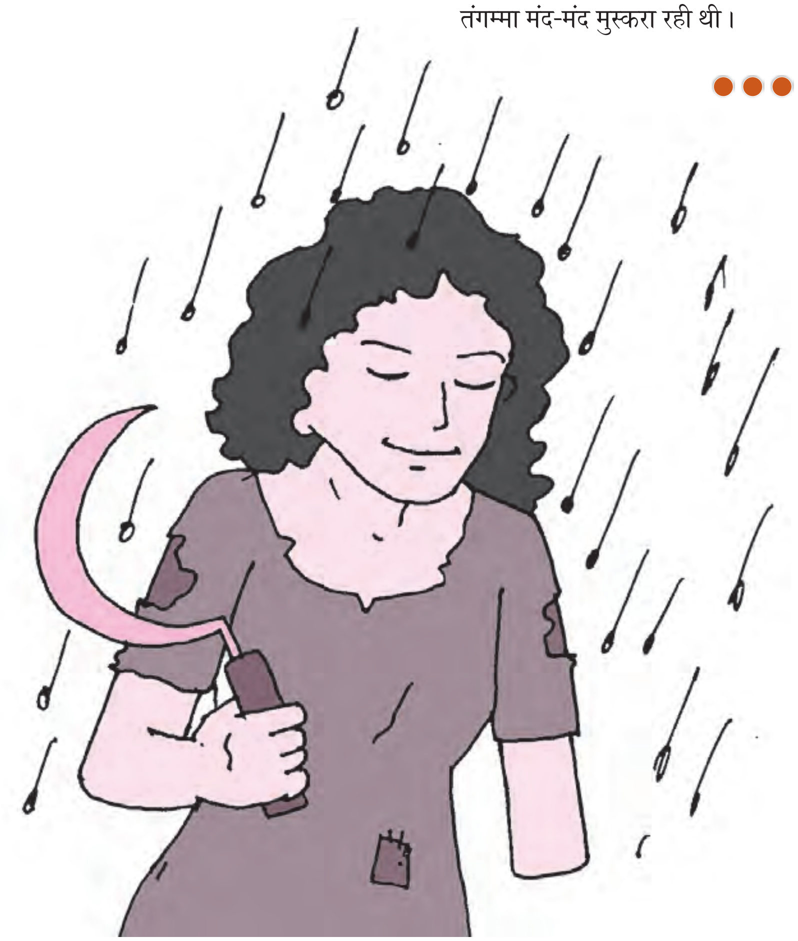

करमा नृत्यः धड़कता है आदिवासी समाज का दिल

संगीता सेठी

संगीता सेठी न केवल कविता, कहानी और बाल लेखन में ही दखल नहीं रखतीं बल्कि वो सामाजिक सरोकारों की भी लेखिका हैं। समाज के मर्म को समझते हुए समाज के उत्सवों में शिरकत करना उनका प्रिय शगल है।

कृति : काव्य, कहानी और बाल कहानियों की कुल नौ पुस्तकें आ चुकी हैं। इनकी रचनाएँ मलयाली, उर्दू, उड़िया और कन्नड़ में अनूदित हो चुकी हैं।

सम्मान/पुरस्कार : राष्ट्रपति पुरस्कार के अतिरिक्त 'दैनिक भास्कर रचना पर्व' और 'मेरी सहेली' में कहानी को पुरस्कार मिला है। काव्य संग्रह 'मैं धरती तू आकाश' को सलिला संस्था द्वारा पुरस्कार मिला है। मातृभारती एप्प द्वारा आयोजित प्रतियोगिता में कहानियों को पुरस्कार प्राप्त हुआ है।

संप्रति : प्रशासनिक अधिकारी
भारतीय जीवन बीमा निगम, अंबिकापुर
छत्तीसगढ़-497001

सनीम..सनीम परेतानूँ
चुबा मिंजुर चीख़ीं रे खदियो...

ऊँचे गले से निकलने वाली स्वर-लहरियों का छत्तीसगढ़ का प्रसिद्ध करमा नृत्य कभी दूरदर्शन पर देखा था। इन पंक्तियों का अर्थ है कि सनीम पर्वत पर मोरनी वियोग में चीखी हैं। समूह में हाथ में हाथ डाले, कभी दाएँ, कभी बाएँ हिलते-डुलते, कभी आगे तो कभी पीछे पैर फेंकते, कभी गोल-गोल घूमते नर्तक मुझे हमेशा ही आकर्षित करते रहे हैं।

राजस्थानी घूमर नृत्यों में हिस्सा लेती बचपन की यादें या पंजाब के गिद्दों के ऊर्जावान नृत्य-ताल के सामने लगता कि इनका नृत्य कितना आसान है। बस आगे पीछे हो जाओ या गोल-गोल घूम जाओ। नृत्य की शौकीन मैंने राजस्थानी नृत्य, पंजाबी नृत्य, हिमाचली नृत्य या हरियाणवी नृत्य की केवल मंचीय प्रस्तुति ही दी थी। मेरे मन-मस्तिष्क में यह दूर-दूर तक भी नहीं था कि नृत्य की सामाजिक प्रस्तुति भी होती है, वो भी उम्रदराज होने पर। सच तो यह है कि लोक नृत्य की महत्ता ही यही है कि सब लोग समूह में नृत्य करें, बिना किसी उम्र और भेद के। छत्तीसगढ़ के प्रवास के दौरान जब मालूम चला कि यहाँ करमा पर्व बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है और उस करमा पर्व के दौरान हर आयु के लोग, स्त्री-पुरुष करमा नृत्य करते हैं तो एक सुखद आश्चर्य हुआ। गली-मोहल्लों में होने वाले करमा नृत्य को देखना मेरे लिए सुखद था।

सात गोतनी सातों करम गाड़ै

सातों गोतनी सेवा कारै– है रे

(यानी सात देवरानियाँ-जेठानियाँ हैं और सातों करम पेड़ उगाती हैं और सातों उसकी सेवा करती हैं।)

मुझे मालूम हुआ कि ये गली-मोहल्ले में चलने वाले करमा नृत्य की प्रस्तुति की रिहर्सल के लिए चल रहा है। दरअसल आदिवासी लोग शहरों की तरफ पलायन कर गए हैं। उनके मन में शंका है कि कहीं आधुनिक पीढ़ी अपनी पर्व और संस्कृति को तो नहीं भूल रही। बस उसी को बचाने की मुहिम के अंतर्गत करमा नृत्य की प्रस्तुति प्रतियोगिता के रूप में रहती है। मादर बजाते पुरुष और नृत्य ताल करती स्त्रियाँ करमा नृत्य को और आकर्षक बनाती हैं।

हर गली-मोहल्ले वालों के बीच स्वस्थ प्रतियोगिता कि किस मोहल्ले के बच्चे, किशोर, युवा, प्रौढ़, वृद्ध, स्त्री-पुरुष इसमें भाग लेते हैं। मैं कुछ दिन देखती रही...करती रही निरीक्षण उनके कदमों का...फिर एक दिन उनके मुखिया से कह बैठी– "मुझे भी करना है नृत्य।" मन में एक आशंका थी कि ये आदिवासी मुझे अपने नृत्य में शामिल भी करेंगे या नहीं? लेकिन उनकी सहर्ष अनुमति ने मुझे आह्लादित कर दिया। एक रात को मैं भी उनकी टोली में शामिल हो गई और कदम मिलाने की कोशिश करने लगी। पर यह क्या? इतना आसान तो नहीं था कदम मिलाना जितना मैं किशोरावस्था में दूरदर्शन पर देखने के दौरान सोचा करती थी।

खेलत खेलत खेला, खेला रे

इदिवंता पुना पेलो

सैंया का घर बड़ी दूर रे

इदिवंता पुना पेलो

(खेलो खेलो, इस वर्ष आई नी बहू, तुम भी खेलो)

मुझे लगा, उनके कदमों में, उनके एक्शन में, उनकी ताल में कोई तकनीक अवश्य है जिसे मैं पकड़ नहीं पा रही हूँ जिससे मेरे कदम या तो आगे निकल रहे हैं या पीछे जा रहे हैं। अब मुझे अपना राजस्थानी नृत्य और पंजाबी नृत्य आसान लगने लगा था।

आखिर तीसरे दिन नृत्य के मुखिया ने मुझे बुलाकर कह दिया कि "आप नहीं कर पाएँगी यह नृत्य, इससे हमारा भी नृत्य बिगड़ेगा।" मैं मायूस हो गई, पर हारी नहीं। मैं उसी टोली की नृत्य विशेषज्ञ के पास गई। तीन दिन का अलग प्रशिक्षण लेने के बाद मैं फिर से उस नृत्य टोली में शामिल हुई और थिरकने लगी–

डलिया में रोटी, डलिया में सिंदूर

हाथ में दीया, दीया ले ले सेवा कारै

भाल भलै ..हयै रे...

मादर की थाप के साथ मैं सहजता से थिरकने लगी। लाल बॉर्डर की सफेद मोटे सूत की साड़ी को टखनों से ऊपर बाँधे हुए, पल्लू को कमर में खोंसकर, हाथों में फूलों के गहने, जूड़े में फूलों का गजरा, पैरों में चाँदी की हँसुली, माथे पर तीन खड़ी लाइनों वाली बिंदी, ठोड़ी पर तीन बिंदी मुझे पूरा आदिवासी बता रही थी और करमा नृत्य मेरी जिंदगी का सबसे सुखद पहलू बन गया जिसे भुलाया नहीं जा सकता। करमा नृत्य के दौरान मैंने गहनता से देखा कि पर्व और संस्कृति कैसे समाज को कड़ी दर कड़ी जोड़ते हैं और समाज की धड़कन को बनाए रखते हैं। करमा नृत्य में भाग लेने वाले महिला-पुरुष शाम को भोजन के बाद मोहल्ले के किसी खुले स्थान में मिलते हैं। रिहर्सल के बहाने अपने सुख-दुःख बाँटते हैं।

गली-मोहल्ले में रहने वाले सभी लोग, चाहे वो किसी बड़े पद पर आसीन हों या मजदूर वर्ग, सब करमा नृत्य के मंच पर एक दिखाई देते हैं। उन सब में उस समय समानता का भाव दिखाई देता है। नृत्य के समय बजने वाली मादर, कंठ से निकलने वाली स्वर-लहरियाँ दिन भर के तनाव को दूर कर देतीं और मन ऊर्जा से भर जाता। मेरे लिए सबसे सुखद यह था कि नृत्य के दौरान एक-दूसरे का हाथ कसकर पकड़ने का अहसास एक-दूसरे को नजदीक से महसूस करने का था कि एक-दूसरे की नब्ज के स्पंदन तक साफ महसूस किए जा सकते थे। तब महसूस होता है कि हम सब ईश्वरीय कृतियाँ एक जैसी हैं।

> "पर्व से जुड़ी भले ही कितनी ही कहानियाँ हों, कितनी किंवदंतियाँ हों, चाहे कितनी ही परंपराएँ क्रियाएँ होती हों, उनके पीछे वैज्ञानिक, धार्मिक कारण भले ही सिद्ध हो पाएँ या न हो पाएँ परंतु सामाजिक महत्त्व अवश्य रहता है।"

क्या है करमा की कथा

करमा पर्व में करम पेड़ का महत्त्व है और इसमें करम की ही पूजा की जाती है। ऐसा माना जाता है कि करम के पेड़ ने एक बार आदिवासी स्त्रियों की रक्षा की थी जिनके कारण ही संपूर्ण आदिवासी वंश बच गया था। तब से ही आदिवासियों के मन में करम के पेड़ का महत्त्व बढ़ गया। पूजा के साथ-साथ करम के पेड़ का जिक्र लोक कथाओं और लोक गीतों में किया जाता है।

हुआ यूँ कि एक बार रोहिताश गढ़ के राजा ने आदिवासियों पर हमला बोल दिया। उस समय आदिवासी लोग अपने किसी उत्सव में व्यस्त थे। पुरुष वर्ग नशे में रहकर मौज-मस्ती में कमजोर साबित हो रहे थे। ऐसे में आदिवासी स्त्रियों ने पुरुषों का वेश धारण करके राजा की सेना से मुकाबला किया और उन्हें परास्त कर दिया। राजा के सैनिक लौट गए। दोबारा वो अपने सेनापति के साथ लौटे और फिर हमला बोल दिया। इस बार भी उन्हें मुँह की खानी पड़ी। तीसरी बार वो सेना राजा के नेतृत्व में आई और हमला बोल दिया लेकिन इस बार भी दबंग आदिवासी स्त्रियाँ नहीं हारी और सेना को खदेड़ दिया।

इस बार आदिवासी स्त्रियाँ युद्ध के बाद एक तालाब के नजदीक बैठ गईं और मुँह धोने लगीं। हारी हुई सेना के राजा और कुछ सिपाही उस तालाब के पास से गुजर रहे थे। उन्होंने देखा कि स्त्रियाँ तालाब के पानी से

मुँह धो रही हैं। मुँह धोने के लिए वो तालाब के पानी में दोनों हाथ एक साथ डालतीं, एक साथ पानी चुल्लू में उठातीं और समान रूप से दोनों हाथों को मुँह की तरफ ले जाते हुए पानी के छींटे डालतीं। राजा ने इस क्रिया को ध्यानपूर्वक देखा और अपने सिपाहियों से कहा– "हे सिपाहियो! तुम स्त्रियों से हार गए!" सिपाहियों ने कहा– "कैसे?" तब राजा ने कहा कि ध्यान से देखो, ये दोनों हाथों से अपना मुँह धो रही हैं जबकि पुरुष एक हाथ से अपना मुँह धोते हैं।

सिपाही तालाब के नजदीक अपना मुँह धोती स्त्रियों के पीछे भागे। अब स्त्रियों को समझ में आ गया कि उनकी पोल खुल चुकी है। वो जंगल की तरफ भागीं। कई सुरंगों के रास्ते से निकलते हुए गुफा में जा छिपीं। गुफा के सामने करम के आदमकद पेड़ गुफा के मुँह को ढके हुए थे। सिपाहियों को उसके पीछे छिपी आदिवासी स्त्रियों के छिपे होने की भनक तक न पड़ी और वो आगे निकल गए।

बस तब ही से आदिवासी स्त्रियों के मन में करम के प्रति श्रद्धा का भाव पैदा हो गया कि यदि करम का पेड़ न होता तो आदिवासियों का समूचा वंश नष्ट हो जाता।

बस यही परंपरा आगे बढ़ते-बढ़ते करमा पर्व में परिवर्तित हो गई। इस पर्व में करम के पेड़ को हर घर के आँगन में रोपकर उसके इर्द-गिर्द नृत्य किया जाता है और इस नृत्य का नामकरण भी करमा नृत्य कर दिया गया।

करमा की अन्य सहयोगी कहानियाँ

जब कोई पर्व परंपरा में आ जाता है तब उसके साथ अन्य किंवदंतियाँ, अन्य कथाएँ, अन्य प्रचलित नियम भी जुड़ जाते हैं। करमा पर्व के साथ भी यही हुआ। जब करमा पर्व को आदिवासी समाज श्रद्धा भाव से मनाने लगा, आदिवासी स्त्रियाँ करमा पर्व का बेसब्री से इंतजार करने लगीं। पुरुष अपनी स्त्रियों के लिए करमा पर्व को मनाने के लिए साज-शृंगार का सामान जुटाते हैं। इसके पीछे जुड़ी दंत कथा है कि एक परिवार में सात भाई थे। उस समय वस्तु विनिमय का युग था। करमा पर्व नजदीक आ रहा था। सातों भाई अपनी-अपनी पत्नी के लिए करमा पर्व में तैयार होने के लिए गहने-कपड़े लेने व्यापार के लिए दूसरे शहर गए। घर में स्त्रियाँ अपने आँगन में करम का पेड़ गाड़कर इंतजार में बैठी थीं। भाई रास्ते में एक तालाब से मछली पकड़ने लगे। मछली को पकाने के लिए उनके पास आग की व्यवस्था नहीं थी। तब बड़े भाई ने सबसे छोटे भाई को पास के गाँव से माचिस लाने भेजा। वो वहाँ गया तो देखा कि गाँव वाले अपने-अपने आँगन में करम का पेड़ गाड़कर उसके इर्द-गिर्द नृत्य कर रहे थे। वो भाई भी उस नृत्य में शामिल हो गया और भूल गया कि वो तो माचिस लेने आया था। जब वो भाई लौटकर नहीं आया तो दूसरे भाई को माचिस लेने भेजा, वो भाई भी वहाँ जाकर करमा नृत्य में मस्त हो गया। इसी तरह एक-एक करके सभी भाई नृत्य में लीन हो गए। अंत में सातवाँ भाई गाँव में माचिस लेने गया। उसने देखा कि बाकी छह भाई तो नृत्य में मस्त हैं। वो गुस्से में आ गया और उन्हें अपशब्द कहने लगा। अब ईश्वर का कोप उस सातवें भाई पर हुआ। उसका व्यापार खत्म हो गया और बीमार रहने लगा। धीरे-धीरे उसका जीवन निर्धनता की तरफ बढ़ने लगा जबकि उसके छह भाई समृद्धशाली होते चले गए। अब सातवें भाई को यह अहसास हो गया कि उससे कुछ गलती अवश्य हुई है। उसने अगले वर्ष करम का पेड़ अपने आँगन में रोपा और नृत्य किया तथा धूमधाम से पर्व मनाया। शनैः-शनैः उसके स्वास्थ्य में सुधार होने लगा और व्यापार में भी बढ़ोतरी होने लगी। इस दिन बहनें भाई के लिए उपवास भी रखती हैं। भाई करम की डाली को काटकर बहन के सम्मान में घर लेकर आता है। करम की डाली को काटते समय एक ही वार में डाली टूटनी चाहिए और जमीन पर भी नहीं गिरनी चाहिए। इस तत्परता के लिए भाई के साथ अन्य नाते-रिश्तेदार भी खड़े रहते हैं ताकि भाई को सफलता मिले।

पर्व से जुड़ी तमाम परंपराएँ

पर्व से जुड़ी भले ही कितनी ही कहानियाँ हों, कितनी किंवदंतियाँ हों, चाहे कितनी ही परंपराएँ क्रियाएँ होती हों, उनके पीछे वैज्ञानिक, धार्मिक कारण भले ही सिद्ध हो पाएँ या न हो पाएँ परंतु सामाजिक महत्त्व अवश्य रहता है। पेड़ों का महत्त्व प्राचीन काल में भी उतना ही था। आज जब पेड़ों की कटाई जोरों पर है तब ऐसे में पेड़ों के प्रति श्रद्धा वाले पर्व और भी महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं।

समाज के रिश्ते-नाते भी पर्व-त्योहार के बहाने बने रहते हैं। पर्व के अवसर पर मिलना-जुलना सामाजिक संबंधों को और मजबूत बनाता है।

यह सब मैंने करमा पर्व के दौरान आदिवासी समाज के बीच रहकर न केवल सूक्ष्मता से देखा बल्कि उनके समाज की धड़कन के हर स्पंदन को साफ-साफ सुना है।

वृत्त के कोण

वृद्धा नहीं रही। नाम था गंगा देवी। यह तो एक न एक दिन सभी का होना है। इसमें विशेष क्या है? लेकिन नहीं। विशेष है। उसका जाना नहीं। विशेष हैं उसके उत्तर कार्य! चार छोरे (बेटे) जो छोड़ गई है। हमारे समाज में छोरे आखिर इसी दिन के लिए तो होते हैं। जिनके नहीं होते वे दुखी होते हैं। उनकी चाहत होती है कि अच्छा न सही, दिव्यांग ही सही, एक छोरा तो हो ही। इस चाहत में चाहे बेटियों की लाइन लग जाए, किसे परवाह होती है। ऐसे ही हम कब सवा सौ करोड़ हो गए, पता चला है! कहा और माना जाता है कि जिनके छोरे होते हैं उनका परलोक सुधर जाता है। यह कितना सच या यथार्थपरक है, यह तो किसी को नहीं पता। लेकिन हाँ, इस युग में जिनके छोरे हों उनका इहलोक बिगड़ जाने की पूरी गारंटी हो चली है। यही इस वृद्धा के साथ हुआ था। जिन चार छोरों पर वह अपने जीवन भर इतराती थी और भगवान को बारंबार धन्यवाद देती थी, उन्हीं ने उसका इहलोक ऐसा बिगाड़ा कि वह अपनी मिसाल आप हो गया। हुआ यह कि घर-परिवार में साधन-संपन्नता औसत से अधिक ही थी। चारों छोरों को अपने पिता से उत्तराधिकार में जमाया व्यापारिक कारोबार मिला था, जिसे उन्होंने अपने बलबूते पर और बढ़ाया ही था। पैसा तो बढ़ा लेकिन संस्कार खत्म हो गए।

वृद्धा के पति ने अपने जीते-जी चारों छोरों में संपत्ति का बँटवारा सब की सहमति से कर दिया। जो थोड़ी-बहुत असहमति थी, उसे सबको समझा-बुझाकर शांत करने की कोशिश की। लेकिन मन की शांति कई बार अथाह समुद्र में अंदर ही अंदर चलने वाली उथल-पुथल की तरह होती है। जो सतह पर शांत दिखाई देती है लेकिन कभी भी सुनामी का रूप ले सकती है। एक ऐसी सुनामी जिसमें प्रलय जैसा विनाश करने की क्षमता होती है।

संपत्ति के बँटवारे में जो पैतृक दुकान थी, वह वृद्धा के पति शत्रुघ्न जी ने अपने पास रखी। उसमें उनका दूसरा बेटा कार्तिक कारोबार में उनका हाथ बँटाता था। इस पूरे प्रकरण में मानो यह दुकान ही मुख्य भूमिका में थी। सबसे बड़ा बेटा वीरेंद्र मानता था कि सबसे बड़ा होने के कारण इस दुकान पर उसका अधिकार स्वाभाविक रूप से ज्यादा है। इस पर शत्रुघ्न जी ने यह कहकर कि "तुम से बड़ा तो मैं खुद हूँ, इसलिए मेरा हक तुमसे भी पहले है। इसलिए मैं यह दुकान अपने पास रखता हूँ। इसमें मेरा हाथ बँटाकर कारोबार करते रहो।" पर वीरेंद्र को अलग तो होना था लेकिन दुकान पैतृक ही चाहिए थी। इसी विवाद में एक दिन शत्रुघ्न जी इस

नंदकिशोर बर्वे

जन्म : 14 अप्रैल 1960, महू, जिला इंदौर, मध्य प्रदेश।

शिक्षा : एम.ए. (हिंदी साहित्य, समाजशास्त्र) सी.ए.आई.आई.बी.।

प्रकाशन : देश की अनेक पत्र-पत्रिकाओं में रचनाओं का निरंतर प्रकाशन। एक व्यंग्य संग्रह 'आया किधर वसंत'। लेखन के अतिरिक्त शहर की अनेक रंग संस्थाओं के साथ रंगकर्म भी।

संप्रति : सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया में सेवारत।

संपर्क : 114, बिजली नगर, इंदौर-452016
मोबाइल : 9827207227
ईमेल : barvenk@gmail.com

दुनिया से कूच कर गए। इसके बाद उसने उनकी वसीयत के उस अंश को लेकर नया विवाद शुरू किया जिसमें लिखा था कि 'जब तक मैं हूँ, दुकान मेरी है'। हालाँकि शत्रुघ्न जी ने स्पष्ट रूप से उनके बाद वह दुकान कार्तिक के पक्ष में लिखी थी लेकिन वीरेंद्र अपनी अनुचित बात पर अड़कर बैठ गया।

परिवार के सभी लोगों ने उसे बहुतेरे समझाया। लेकिन आदमी की अक्ल पर जब स्वार्थ का परदा पड़ जाता है, तब उसे विवेक या नीति की कोई बात न दिखाई देती है, न सुनाई देती है। वीरेंद तो विवेकशून्य था ही, ऊपर से दुर्भाग्य यह था कि उसका बेटा उससे भी अधिक स्वार्थी हो चला था। सब मिलाकर परिवार में दसियों संपत्तियाँ थीं, लेकिन उस दस बाई दस की दुकान ने मानो सब का सुख-चैन छीन लिया था। एक सीमा के बाद हर आदमी अपनी दुनियादारी में लग जाता है। यही इस वृद्धा के बाकी दोनों छोरों ने भी किया। वे दोनों— अर्जुन और महेश— अपने-अपने कारोबार में लगे थे और इस रोज-रोज की कलह से उन्होंने अपने आप को अलग कर लिया। उनका तर्क था कि जब वसीयत में उनका कोई हिस्सा विवादित नहीं है तो वे क्यों अपना समय इस काम में जाया करें।

समझाइश के जब सारे दौर निपट गए, तब वीरेंद्र इस मामले को कोर्ट तक ले गया। विवादों में कभी भी मिठाई नहीं बँटती। छिनता है सुख-चैन। होती है जगहँसाई। और एक पक्ष की हार। यह मामला भी इस परिपाटी से अलग कैसे हो सकता था? कोर्ट में कागज बोलता है, पक्षकार नहीं। न ही वकील। वीरेंद्र के पास अपने दावे को सिद्ध करने का कोई प्रमाण नहीं था, इसलिए वह हार गया। लेकिन वह पता नहीं किस मिट्टी का बना था। हार पर हार मिलने के बाद भी हार मानने को तैयार नहीं था। वह लड़ता रहा। कोर्ट के बाद कोर्ट। और हारता भी रहा कोर्ट दर कोर्ट। लड़ाई ऐसी ही होती है जिसमें दोनों पक्षों की सहमति की जरूरत नहीं होती। एक पक्ष भी लड़ाई जारी रख सकता है, दूसरे की तो मजबूरी हो जाती है। वीरेंद्र बेबात लड़ रहा था, कार्तिक तो बेबस था। अब अदालतों से बैरंग लौटने के बाद वीरेंद्र दुष्टता पर उतर आया था। वह कभी दुकान पर आकर बेवजह झगड़ा करने वाले ग्राहक भेजता तो कभी गुंडे। जो कार्तिक को बात-बेबात डराते-धमकाते। थक-हारकर कार्तिक को उस दुकान को बेचने का निर्णय बेमन से लेना पड़ा। जब वीरेंद्र को यह बात पता चली तो उसने उस दुकान को कौड़ियों के भाव खरीदना चाहा। लेकिन कार्तिक ने भी तय कर लिया था कि वह भले ही दान में दे देगा पर वीरेंद्र को तो कतई हाथ नहीं आने देगा। वही हुआ भी। उसने शहर के एक नामी गुंडे से आनन-फानन में उस दुकान का सौदा पक्का कर लिया और जल्दी ही उसे सौंप दी। लेकिन कार्तिक और उसकी माँ पुरखों की दुकान के जाने से दुखी भी थे। वीरेंद्र सिर पटकता रह गया।

गंगा देवी की तो मानो दुनिया ही लुट गई। उन्होंने खुद को जीवन में दूसरी बार इतना अकेला पाया था। पहली बार जब शत्रुघ्न जी नहीं रहे थे। गंगा देवी, कार्तिक से काफी नाराज रहने लगी थीं। उनका कहना था कि चाहे जो भी होता लेकिन कार्तिक को पुश्तैनी दुकान नहीं बेचनी थी। कार्तिक का कहना था कि ऐसा सोना पहनने से क्या फायदा जिससे कान कट जाएँ? इस बात को लेकर विवाद बढ़ता ही गया। उन्होंने बाकी तीनों बेटों को विवाद के निपटारे के लिए बुलाया। वीरेंद्र की तो कोई संभावना ही नहीं थी कि वह आकर माँ की बात सुनता। लेकिन उनकी उम्मीदों के खिलाफ अर्जुन और महेश ने भी बहुत ज्यादा रुचि नहीं दिखाई। बल्कि कार्तिक, अर्जुन और महेश में माँ को आगे अपने साथ रखने की बात पर ही विवाद हो गया। कार्तिक का कहना था कि वही क्यों माँ को अपने पास रखे? बाकी भी तो बेटे हैं। उनका माँ के प्रति कोई कर्तव्य नहीं है? अर्जुन और महेश ने जब पिता की संपत्ति का ज्यादा हिस्सा पाने का तर्क दिया तो कार्तिक ने कहा कि माँ के हिस्से की जो भी संपत्ति है वह भी ले लो लेकिन माँ को अपने साथ ले जाओ। वृद्धों के साथ यही होता है, जब वे पराधीन होते हैं तब कहने को अपना सब कुछ उनके पास होते हुए भी वे खाली हाथ ही रहते हैं। लेकिन विडंबना यह है कि जब तक आदमी के हाथ-पाँव में ताकत होती है वह अपना भविष्य उस तरह से नहीं देखता। गंगा देवी भी अपवाद नहीं थीं। नौबत यहाँ तक आ पहुँची कि उन्होंने रोज रोज की चख-चख से तंग आकर किसी वृद्धाश्रम में जाने का प्रस्ताव किया। एक मिनट के सन्नाटे के बाद तीनों छोरों ने मौन स्वीकृति दे दी।

गंगा देवी, गंगा नदी की तरह गोमुख से गंगासागर तक की यात्रा के अंतिम पड़ाव पर वृद्धाश्रम में आ गईं। यह भी एक संयोग कहें या कि दुर्भाग्य ही था कि कुछ सालों पहले उनकी इकलौती बेटी संध्या के अत्याचारों और उपेक्षा से तंग आकर उसकी सास और

गंगा देवी की समधन कावेरी भी इसी आश्रम में रह रही थीं। उस समय कावेरी ने जब गंगा देवी से संध्या की करतूतों की चर्चा की तो उन्होंने 'बेटी के घर में हम दखल नहीं देते।' कहकर अपना पल्ला झाड़ लिया था। अब समय की बलिहारी देखिए कि वे ही गंगा देवी अब उन्हीं कावेरी देवी के साथ वृद्धाश्रम में अपने जीवन का संध्या काल काट रही हैं। चूँकि वृद्धाश्रम में कावेरी देवी पहले से ही रह रही थीं इस कारण वे उनसे 'सीनियर' थीं और गंगा देवी 'जूनियर'! लेकिन वास्तव में ही नहीं था, इसलिए वे वहीं रहने को मजबूर थीं। पर गंगा देवी के पास तो अनेक विकल्प खुले थे। फिर भी उन्हें वृद्धाश्रम की राह लेनी पड़ी।

लेकिन समय की नदी में कोई मोड़ या रुकावट न आए, ऐसा कहाँ होता है। दिन ऐसे ही बीत रहे थे कि एक दिन अचानक गंगा देवी खाना खाते-खाते चक्कर खाकर बेहोश हो गईं। समय पर किए गए आश्रम वालों के अनेक प्रयासों से मुश्किल से वे बच सकीं। लेकिन बीमारी जो भी थी वह गेहूँ के

> **इस उम्र में जब शरीर की प्रतिरोधक क्षमता खत्म होने को होती है, तब डॉक्टर भी क्या कर सकते हैं। हालाँकि उनका काम होता है मरीज की अंतिम साँस तक अपने भगीरथ प्रयास करना। गंगा देवी ने ही अपने ऑपरेशन के लिए दृढ़तापूर्वक मना कर दिया था– "जितना जी ली हूँ वही बहुत है। वैसे भी अब क्या बाकी रह गया है और कुछ देखने को।"**

गंगा देवी उम्र में कावेरी से काफी बड़ी थीं। कावेरी देवी को एकबारगी तो मन में आया कि अपनी सीनियरटी का 'फायदा' उठाया जाए! लेकिन चाहकर भी वे ऐसा नहीं कर सकीं। गंगा देवी पर कावेरी को गुस्सा कम और दया ज्यादा आती थी। कावेरी को याद है कि वे जब अपने इकलौते बेटे के संबंध के सिलसिले में गंगा देवी से मिलती थीं तो वे अपने चार छोरे होने के गर्व में इतनी चूर होती थीं कि कावेरी मन ही मन कहीं हीन भावना से ग्रस्त हो जाती थीं और उनको लगता था कि उनके भी एकाधिक बेटे क्यों नहीं हुए! लेकिन अब उन्हें लगता है कि छोरों की संख्या से वृद्धावस्था के सुखपूर्वक बीतने के बीच कोई सीधा संबंध नहीं है। न ही यह कोई गारंटी का विषय है।

गंगा देवी और कावेरी चूँकि एक ही कश्ती की सवार थीं तो एक ही दिशा में बह रही थीं, इसलिए उनमें परस्पर जो समझ का समीकरण विकसित हुआ, वह अपनी मिसाल आप है। बस होना यह चाहिए कि आपसी दुःख की यह समझ समय रहते आ जाए, तो संभव है, समाज में वृद्धाश्रमों की जरूरत ही न रहे। वे दोनों साथ ही रोतीं और साथ ही हँसतीं। कावेरी के पास तो कोई और विकल्प

घुन की तरह अंदर ही अंदर उन्हें खाती जा रही थी। उन्हें हृदयाघात हुआ था और बहुत सी नस-नाड़ियाँ चोक हो गई थीं। इस उम्र में जब शरीर की प्रतिरोधक क्षमता खत्म होने को होती है, तब डॉक्टर भी क्या कर सकते हैं। हालाँकि उनका काम होता है मरीज की अंतिम साँस तक अपने भगीरथ प्रयास करना। गंगा देवी ने ही अपने ऑपरेशन के लिए दृढ़तापूर्वक मना कर दिया था— "जितना जी ली हूँ वही बहुत है। वैसे भी अब क्या बाकी रह गया है और कुछ देखने को।" उन्होंने दुखी स्वर में कहा।

जब परिवार में उनके स्वास्थ्य का समाचार पता चला तब भी उनका कोई परिजन उनको देखने तक नहीं आया सिवाय एक पोते के! वह था महेश का बेटा ऋषि। जब वे वृद्धाश्रम आई थीं तब वह होश सँभाल ही रहा था। वह भी उनकी तरह पराधीन था। क्योंकि आठ-दस बरस के अबोध बालक की कौन सुनता? इसलिए वह भी उस समय कुछ नहीं कर सका था। इस ताजे घटनाक्रम से वे और भी आहत हुईं। इसके बाद तो उन्होंने अपनी अंतिम इच्छा के रूप में आश्रम को यह लिख दिया था कि उनके जब भी सौ दिन पूरे हों, तब वे ही उनका अंतिम संस्कार करें और उनके किसी भी लड़के या किसी और को उनके शव को हाथ भी न लगाने दिया जाए। न ही किसी प्रकार के उत्तर कार्य किए जाएँ। कावेरी देवी ने भी उनके इस इच्छा पत्र पर खुशी-खुशी गवाह के रूप में दस्तखत किए। वे भी मानती थीं कि जो संतान माँ-बाप को जीते-जी सुख नहीं दे सकती उन्हें उनके उत्तर कार्य करके समाज में अपनी प्रतिष्ठा (?) बढ़ाने का अवसर क्यों मिलना चाहिए?

फिर एक दिन गंगा देवी गंगासागर से भी आगे महासागर में विलीन हो गईं। वे इहलोक छोड़ गईं। जब छोरों को पता चला तो वे अपनी 'माँ' को लेने आ गए। आश्रम वालों और कावेरी देवी ने उनकी अंतिम इच्छा का हवाला दिया तो वे लड़ने-लड़ाने पर उतर आए। आश्रम वालों को मजबूरन पुलिस बुलानी पड़ी। दोनों पक्षों में समझौता हुआ कि आश्रम वाले और सारे छोरे अंतिम संस्कार मिलकर करेंगे। फिर छोरे चाहें तो उनका उत्तर कार्य करें या न करें। जो छोरे गंगा देवी को जीते-जी वृद्धाश्रम भेजकर समाज में शान से जी रहे थे, उनके स्वर्गवासी हो जाने और उनका उत्तर कार्य न कर पाने पर अब 'समाज में क्या मुँह दिखाएँगे।' कहने लगे। कहा जाता है कि दुष्ट लोगों की सज्जनों से तो पटरी नहीं ही बैठती है, लेकिन उनमें आपस में सामंजस्य नहीं रहता। चारों छोरे भी इस बात के अपवाद नहीं थे। चारों में उत्तर कार्य को लेकर विवाद शुरू हो गया। जब कोई सहमति नहीं बनी तो वे चारों अपने अपने स्तर पर 'माँ' का उत्तर कार्य करने की तैयारी करने लगे, ताकि मृतात्मा को स्वर्गारोहण में कोई कष्ट न हो और वे मोक्ष को प्राप्त हों। जगहँसाई तो अब भी हो रही थी, लेकिन उसकी परवाह कौन कर रहा था!

समाज भी एक वृत्त होता है। हर एक उसके केंद्र से जुड़ा होता है और परिधि में रहता है लेकिन अपवादस्वरूप उस वृत्त में कुछ कोण भी उभर आते हैं, जो वृत्त को वृत्त नहीं रहने देते बल्कि उसका स्वरूप बिगाड़ देते हैं। ये चारों छोरे वृत्त के ऐसे ही कोण थे।

उत्तराखंड एक समग्र अनुशीलन

समीक्षक : **सुधीरनाथ झा**

लेखक : **चित्रा फुलेरिया**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110002

पृष्ठ : 432,

मूल्य : रु. 410/-

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत ने देवभूमि उत्तराखंड पर ज्ञान-वर्धक पुस्तक का प्रकाशन कर एक सराहनीय कार्य किया है। पुस्तक में राज्य के इतिहास, भूगोल, समाज, अर्थव्यवस्था, प्रशासन, जनसंख्या संघटन, वन्य-जीवन, भाषा-साहित्य, कला-संस्कृति, पर्व-त्योहारों, पावन स्थलों, क्रीड़ा जगत, जनसंचार माध्यमों, विभूतियों आदि सभी पक्षों का समावेश हुआ है, जो इसे राज्य पर इसके पूर्व लिखित पुस्तकों से अलग करता है।

दो खंडों का छोटा-सा राज्य उत्तराखंड प्राकृतिक, सांस्कृतिक और धार्मिक दृष्टि से समृद्ध होने के कारण भारत का गौरव कहलाता है। इसका अपना एक अलग और विशिष्ट इतिहास है, जो इस क्षेत्र में मानव सभ्यता के विकास का साक्षी रहा है। यह इतिहास आदिकाल से आज तक के विभिन्न युगों में होने वाली अनेकानेक राजनीतिक, सामरिक एवं सामाजिक घटनाओं को समेटे हुए है। प्रस्तुत पुस्तक की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि अध्याय में इस इतिहास के प्रति विद्वानों के अलग-अलग मतों को रखते हुए, जहाँ राज्य के वैदिक-पौराणिक युग के परिदृश्य के साथ-साथ विभिन्न राजवंशों के शासन कालों और उनके पश्चात् औपनिवेशिक काल तथा स्वतंत्रता के बाद के परिदृश्य का उल्लेख हुआ है, वहीं इसके राज्य के रूप में गठन के विभिन्न कारणों की पड़ताल भी हुई है। यह समस्त जानकारी अपने रूपाकार में लघु होते हुए भी सारगर्भित और तथ्यपरक है, जो इतिहास के छात्रों-अध्येताओं के अध्ययन-शोध की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

किसी क्षेत्र के विकास में उसके भौतिक विन्यास और भौगोलिक परिवेश की भूमिका अहम होती है। राज्य का भौगोलिक परिवेश विचित्रताओं से भरा है। यहाँ की पारिस्थितिकी, भूगर्भीय संरचना, पर्वत श्रृंखलाएँ, कंदराएँ, वादियाँ, नदी प्रणाली, ताल, झीलें आदि इसे एक विशिष्ट रूप प्रदान करते हैं। पुस्तक में इन सभी पहलुओं का सूक्ष्म चित्रण मिलता है। इनके अतिरिक्त राज्य की जल अवस्थिति, जलवायु, वर्षा, जल संचालित विभिन्न विद्युत परियोजनाओं और प्राकृतिक आपदाओं का उल्लेख भी हुआ है, जो लेखिका की सूक्ष्म दृष्टि का द्योतक है।

उत्तराखंड का समाज विविधताओं से भरा है। अन्य राज्यों की भाँति यहाँ का समाज भी विभिन्न जातियों का सम्मिश्रण है, जिनकी अपनी-अपनी संस्कृतियाँ, अपने-अपने भूषा-परिधान, अपने-अपने खान-पान हैं। पुस्तक के 'सामाजिक संरचना' अध्याय में इन सभी जातियों और उनके रहन-सहन, पर्व-त्योहारों, रस्म-रिवाजों, पुरुषों तथा महिलाओं के वस्त्राभूषणों, देवी-देवताओं से जुड़ी मान्यताओं आदि का विस्तृत विवरण उपलब्ध कराया गया है। इनके अतिरिक्त राज्य में प्रचलित लोक नृत्यों और वाद्यों का उल्लेख राज्य के प्रति ज्ञान की वृद्धि करता है। अध्याय के महिला जगत अंश में राज्य की महिला उद्यमियों और विभिन्न स्वयंसेवी महिलाओं का उल्लेख है जो यहाँ की जुझारू और परिश्रमी महिलाओं की स्थिति को उजागर करता है।

राज्य की जनसंख्या छोटी है, जिसमें विभिन्न जातियों और मूलों के लोग हैं। पुस्तक में समस्त राज्य के साथ-साथ जिलेवार शहरी एवं ग्रामीण जनसंख्या विवरण, जनसंख्या की दशकीय वृद्धि दर, स्त्री-पुरुष जनसंख्या एवं वृद्धि दर, स्त्री-पुरुष अनुपात, शिशु जनसंख्या और वृद्धि दर, साक्षरता व साक्षरता दर आदि जनसंख्या से संबद्ध सभी पहलुओं पर चर्चा की गई है। यह समस्त जानकारी तथ्यपरक और लाभदायक है।

पुस्तक के 'प्रशासन एवं संसदीय प्रणाली' अध्याय में उत्तराखंड के प्रशासन और प्रशासनिक प्रणाली का विशद विवरण उपलब्ध कराया गया है। लेखिका ने जहाँ राजवंशों तथा अंग्रेजों की प्रशासनिक प्रणाली के इतिहास को छुआ है, वहीं वर्तमान प्रशासन के विभिन्न विभागों, निदेशालयों, निगमों आदि के साथ-साथ प्रशासनिक इकाइयों के रूप में विभिन्न जिलों की भौगोलिक-सामाजिक-आर्थिक स्थिति तथा संसदीय प्रणाली पर भी प्रकाश डाला है।

उत्तराखंड की अर्थव्यवस्था राज्य तथा देश के विकास में महती भूमिका निभा रही है। खेती, पर्यटन, पशुपालन, वन आदि इस अर्थव्यवस्था के मुख्य आधार हैं। पुस्तक में इन सभी पहलुओं

के साथ-साथ राज्य के भू-संसाधन, मानव संसाधन, जल संसाधन, खनिज, आधारभूत संरचना आदि का विशद उल्लेख हुआ है। वहीं, वित्तीय मामले तथा अर्थव्यवस्था के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान देने वाले विभिन्न परंपरागत शिल्पों और कुटीर उद्योगों तथा हस्त निर्मित व हस्तचालित उपकरणों जैसे ओखली, घराट, कोल्हू, ज्यौंत, राँच-अड्डा आदि विभिन्न उपकरणों की विस्तृत जानकारी भी मुहैया कराई गई है।

प्रकृति ने उत्तराखंड को असीम वन संपदा दी है। राज्य का लगभग तीन-चौथाई क्षेत्र वनभूमि है, जिसमें असंख्य पेड़-पौधे, लता-गुल्म आदि पाए जाते हैं, जिनका किसी न किसी रूप में लाभ अर्थव्यवस्था को मिलता है। इस विशाल वन्य जगत में पशु-पक्षियों तथा फूलों-फलों की असंख्य प्रजातियाँ भी पाई जाती हैं। अपनी फूलों की घाटी, उद्यान-उपवन-अभयारण्य आदि को लेकर राज्य प्रख्यात है, जिनका आनंद लेने के लिए हर वर्ष विश्व के कोने-कोने से सैलानी आते हैं। लेखिका ने इन सभी का सजीव और सूक्ष्म चित्रण किया है जिसे पढ़ते हुए प्रकृति का यह सारा दृश्य मानो पाठक की आँखों के समक्ष जीवंत हो उठता है। सारा विवरण लेखिका की उत्कृष्ट रचनाशीलता का परिचय देता है।

भाषा और साहित्य किसी समाज के परिचायक होते हैं, जिनमें उस समाज के सारे पक्षों की झलक दिखाई देती है। उत्तराखंडी समाज भी भाषा और साहित्य से समृद्ध है, जहाँ अलग-अलग जातियों की अलग-अलग बोलियाँ हैं। राज्य ने देश और विश्व स्तर के कई साहित्यकार दिए हैं जिन्होंने हिंदी भाषा और साहित्य को नई ऊँचाई दी है। पुस्तक में राज्य के अलग-अलग क्षेत्रों में बोली जाने वाली भाषाओं, बोलियों और लोकोक्तियों-मुहावरों के साथ-साथ लोक साहित्य, कथाओं-गाथाओं, नाटकों आदि का विशद विवरण मिलता है। वहीं, विभिन्न साहित्यकारों और उनकी कृतियों की विस्तृत चर्चा पाठक का उनसे परिचय कराती है।

उत्तराखंड के लोगों में धर्म के प्रति गहरी आस्था होती है। अन्य राज्यों की भाँति ये लोग विभिन्न अवसरों पर पर्व-त्योहारों का आयोजन करते हैं, जिनमें राज्य की संस्कृति की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। इन अवसरों पर मेलों का आयोजन भी होता है, जिनमें स्थानीय लोगों के अतिरिक्त दूर-दराज के लोग आते हैं। पुस्तक में लेखिका ने इन पर्व-त्योहारों के विस्तृत विवरण के साथ-साथ लोगों की मिलनसारिता का सजीव चित्रांकन किया है। यह समस्त विवरण राज्य के सामाजिक परिवेश को समझने में सहायक हो सकता है।

कला-संस्कृति की दृष्टि से भी राज्य अत्यंत समृद्ध है। यहाँ के ऐंपण (अल्पना), बारबूँद, ज्यूँति मातृका, रंगवाली पिछौड़ा पट्टा चित्र आदि विश्वप्रसिद्ध हैं। वहीं गढ़वाली चित्रकला, भित्ति चित्रकला, ललित कला, उत्तराखंडी वास्तुकला आदि की अपनी अलग पहचान है। पुस्तक में इन सभी कलाओं और इनके अवसरों का समाहार बड़े ही आकर्षक ढंग से हुआ है।

उत्तराखंड देवभूमि है, जहाँ अनेकानेक पावन स्थल हैं। ये सभी पावन स्थल तीर्थाटन के साथ-साथ पर्यटन की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण हैं, जहाँ देश-विदेश के तीर्थयात्री और सैलानी आते रहते हैं। लेखिका ने इन पावन स्थलों का सूक्ष्म चित्रण प्रस्तुत किया है, जो एक यात्रा-वृत्तांत प्रतीत होता है और लेखिका के पर्यटक होने का संकेत देता है। पाठक को प्रायः सभी प्रसिद्ध पावन स्थलों का परिचय पुस्तक के चंद पृष्ठों पर मिल जाता है।

राज्य में खेलकूद का विकास तेजी से हो रहा है। यहाँ से विभिन्न खेलों की कई ऐसी प्रतिभाएँ निकली हैं, जिन्होंने राज्य और राष्ट्र का नाम रौशन किया है। पुस्तक में राज्य में खेले जाने वाले विभिन्न खेलों और खेल प्रतिभाओं के अतिरिक्त राज्य और राष्ट्र स्तरीय क्रीड़ांगनों का उल्लेख किया गया है जो उदीयमान खिलाड़ियों के लिए प्रेरणा का कार्य कर सकता है।

जनसंचार माध्यमों के मानचित्र पर राज्य का अपना अलग स्थान है। यहाँ कई ऐसे पत्रकार और संवाददाता हुए हैं जिन्होंने पत्रकारिता जगत में और रेडियो समाचार के क्षेत्र में अपनी गहरी छाप छोड़ी है। राज्य में पत्रकारिता का इतिहास बहुत गहरा है। लेखिका ने राज्य से अतीत और वर्तमान में निकलने वाले विभिन्न हिंदी और अंग्रेजी समाचार पत्रों और पत्रिकाओं का खाका प्रस्तुत किया है, जिससे वहाँ के समृद्ध पत्रकारिता जगत की जानकारी मिलती है। वहीं, उन्होंने राज्य में रेडियो, दूरदर्शन तथा नानाविध वेबसाइटों की स्थिति पर भी प्रकाश डाला है।

उत्तराखंड की धरती ने अनेकानेक विभूतियों को जन्म दिया है, जिनमें से कई लोग अंतरराष्ट्रीय स्तर पर ख्यातनाम हुए। इन विभूतियों का राज्य के विकास में योगदान अप्रतिम है। लेखिका ने इन प्रसिद्ध विभूतियों का चित्रण करने के साथ-साथ नेपथ्य में छिपी विभूतियों को भी प्रकाश में लाकर समाज के प्रति अपने कर्तव्य का पालन किया है।

इन सबके अतिरिक्त पुस्तक में राज्य के वर्तमान परिदृश्य पर भी प्रकाश डाला गया है, जो संक्षिप्त किंतु तथ्यपरक है।

कुल मिलाकर पुस्तक सूचनाप्रद और संग्रहणीय है, जो आम पाठकों के साथ-साथ प्रतियोगिता की तैयारी कर रहे छात्र-छात्राओं के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध होगी। अपनी सरल और बोधगम्य भाषा के कारण पुस्तक पठनीय बन पड़ी है।

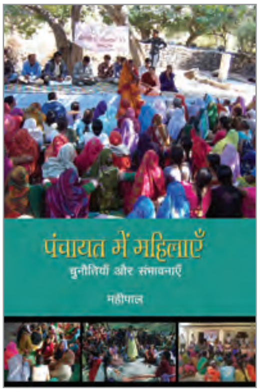

पंचायत में महिलाएँ : चुनौतियाँ और संभावनाएँ

समीक्षक : **डॉ. कमलेश कुमारी**

लेखक : **महीपाल**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110002

पृष्ठ : 204

मूल्य : रु. 210/-

प्रस्तुत पुस्तक 'पंचायत में महिलाएँ : चुनौतियाँ और संभावनाएँ' में महिलाओं की पंचायत में वर्तमान भूमिका का व्यापक एवं विशद रूप में वर्णन किया गया है। पुस्तक में महिलाओं के अतीत से लेकर वर्तमान समय में उनकी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं प्रशासनिक भागीदारी को लेखक ने वास्तविक ब्योरा देते हुए प्रस्तुत किया है। जैसा कि अतीत में महिलाओं का आदर व सम्मान था, लेकिन समय के साथ-साथ उनके स्तर में कमी होना आरंभ हो गया। सामाजिक व धार्मिक रीति-रिवाजों के बंधनों ने महिलाओं को ऐसे शिकंजे में कस दिया, जिससे कि वे सार्वजनिक जीवन में भाग न ले सकें। मुगल व ब्रिटिश काल में व उसके बाद महिलाओं की सामाजिक स्थिति सुधारने के लिए तो अनेक आंदोलन हुए, लेकिन ऐसे प्रयास नहीं किए गए कि महिलाओं की राजनीतिक हैसियत बढ़े, जो वास्तव में सभी समस्याओं को सुलझाने की कुंजी है। आजादी के दौरान राजाराम मोहन राय, महात्मा गाँधी और डॉ. भीमराव अंबेडकर जैसे समाज सुधारकों ने महिलाओं को राजनीति में भागीदारी करने की वकालत की।

यूँ तो भारत में पंचायत की परंपरा बहुत पुरानी है, लेकिन इनमें महिलाओं की भागीदारी की परंपरा आजादी के बाद की है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद बलवंत राय मेहता समिति की रिपोर्ट के बाद लोकतांत्रिक पंचायती राज व्यवस्था की शुरुआत हुई। उससे पहले पंचायतें अलोकतांत्रिक थीं। इस रिपोर्ट में महिलाओं की भागीदारी के बारे में मात्र इतना कहा गया था कि अगर महिलाएँ स्वयं चुनकर नहीं आती हैं तो उन दो महिलाओं को पंचायतों का सदस्य बना दिया जाए, जो महिलाओं व बच्चों के कल्याण में रुचि रखती हों। इसका यह अर्थ हुआ कि महिलाओं को इस योग्य नहीं समझा गया कि वे पंचायत के कार्यों को कर सकेंगी। यह वास्तव में पुरुषवादी सोच का ही परिणाम है कि महिलाओं को लालन-पालन के अलावा और किसी योग्य नहीं समझा जाए। अशोक मेहता समिति की रिपोर्ट ने भी महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए कोई खास प्रयास नहीं किए थे। इस समिति ने संविधान में संशोधन के लिए विधेयक का मसौदा तैयार तो किया था, लेकिन उसमें महिलाओं के आरक्षण का प्रावधान नहीं किया। बाद में कुछ राज्य, जैसे— कर्नाटक, केरल व पश्चिम बंगाल के राज्य स्तर के राजनीतिकों ने राजनीतिक इच्छा दिखाई, जिससे पंचायतों में महिलाओं की मुखरता पर अच्छे प्रभाव पड़े। अस्सी के दशक में यह बात साफ तौर पर सामने आई कि बिना महिलाओं की भागीदारी के संपूर्ण ग्रामीण विकास संभव नहीं।

73वें संविधान संशोधन में महिलाओं को सदस्य व अध्यक्ष पद के लिए आरक्षण प्राप्त हुआ, जिसके कारण लगभग 2.5 लाख ग्राम पंचायत, 500 हजार पंचायत समितियाँ व 500 जिला पंचायतों में लगभग 11 लाख से ऊपर महिलाएँ सदस्य व अध्यक्ष के रूप में चुनकर आई हैं। इस प्रावधान ने महिलाओं की दमित ऊर्जा को उजागर किया है, जो निकट भविष्य में भारतीय राजनीति को नया मोड़ दे सकेगी।

पंचायत चुनाव से पहले भ्रांतियाँ पैदा की जा रही थीं कि चुनाव लड़ने के लिए कहाँ से आएँगी महिलाएँ? लेकिन प्रत्यक्ष को प्रमाण की जरूरत नहीं। जब चुनाव संपन्न हुए तो पाया गया कि कुछ राज्यों— जैसे कर्नाटक, पश्चिम बंगाल में महिलाओं की संख्या न्यूनतम सीमा को भी पार कर गई। पंचायतों में प्रभावी भूमिका निभाने के लिए महिलाओं के सामने अनेक सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व प्रशासनिक सीमाएँ रोड़ा अटका रही हैं। सामाजिक सीमाओं ने उन्हें कमजोर व असहाय बना दिया है। घर व समाज का परिवेश उन्हें आज्ञा नहीं देता कि वे पंचायतों में खुलकर हिस्सा ले सकें। उनकी अशिक्षा व स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं ने उनके सामने और भी मुश्किल खड़ी कर दी है।

राजनीतिक सीमाओं के अंतर्गत महिलाओं के निर्णय लेने की प्रक्रिया में महिलाओं की वांछित भागीदारी नहीं है। साथ ही पंचायती राज अधिनियम में भी कुछ ऐसे प्रावधान हैं, जो महिलाओं को पंचायतों में भाग लेने से निरुत्साहित करते हैं।

माना कि महिलाओं के सामने अनेक सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व प्रशासनिक सीमाएँ हैं, लेकिन ऐसा नहीं है कि उनको दूर नहीं किया जा सकता या उनका समाधान संभव नहीं है। महिलाओं की गरीबी दूर करने के लिए विभिन्न ग्रामीण विकास व उन्मूलन कार्यक्रम जैसे राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम, इंदिरा आवास योजना, राष्ट्रीय सामाजिक कार्यक्रम, सहायता कार्यक्रम व अन्य जीवन गुणवत्ता कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं, जिनमें महिलाओं के लिए विशेष प्रावधान हैं। इनके द्वारा महिलाओं की आर्थिक स्थिति में सुधार आएगा, जिसके सकारात्मक प्रभाव महिलाओं पर पड़ेंगे।

पंचायतों में महिलाओं की प्रभावी भूमिका सुनिश्चित करने के लिए केंद्र सरकार, राज्य सरकार व विभिन्न स्वैच्छिक संस्थाएँ महिलाओं को प्रशिक्षण दे रही हैं। भविष्य में जैसे-जैसे महिलाएँ

प्रशिक्षण प्राप्त करने से व पंचायतों की बैठकों में भाग लेने के माध्यम से इकट्ठा होंगी, कम मुखर महिला प्रतिनिधियों पर मुखर महिलाओं का प्रभाव पड़ेगा, जो उनकी पंचायतों की भूमिका को सकारात्मक रूप से प्रभावित करेगा।

पुस्तक में पंचायत में कार्यरत महिलाओं की विभिन्न चुनौतियों का अध्ययन करने के साथ यह बताने का प्रयास किया गया है कि इन संस्थाओं में महिलाओं की भागीदारी प्रभावी बनाने की अनेक संभावनाएँ हैं।

पुस्तक में महिला पंचों व सरपंचों की मुखरता के अनेक उदाहरण हैं जिनका सकारात्मक प्रभाव अपेक्षाकृत कम मुखर महिलाओं पर पड़ रहा है। पुस्तक को तीन भागों में विभक्त किया गया है। प्रथम भाग में महिलाएँ एवं पंचायत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, 73वें संविधान संशोधन व विस्तार अधिनियम की मुख्य विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है।

आध्यात्मिक चेतना और सुगंधित जीवन

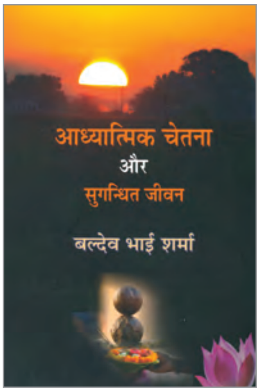

समीक्षक : **प्रेम प्रकाश**

लेखक : **बल्देव भाई शर्मा**

प्रकाशक : अनुज्ञा प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली।

पृष्ठ : 168

मूल्य : रु. 175/-

संस्कार और अध्यात्म की चर्चा भारतीय चिंतन परंपरा से गहरी जुड़ी है। कभी इस तरह की चर्चा जीवन-समाज में आम हुआ करती थी, पर इसकी जगह घेरने वाली कई और चीजें आ गई हैं। वैसे भी आधुनिकता जब अपना उत्तरकाल देख रही हो तो ठहराव के साथ आत्मचिंतन की गुंजाइश कहाँ? सो रफ्तार के साथ नए-नए प्रबंध कौशल के संग जीवन जीने की बात हो रही है। बल्देव भाई शर्मा की पुस्तक 'आध्यात्मिक चेतना और सुगंधित जीवन' हमें यह बताती है कि विकास के जोर और होड़ में हम खुद से ही कितने दूर होते जा रहे हैं। पुस्तक में शामिल एक लेख में वे कहते भी हैं, 'ये रफ्तार का दौर है, इसमें जरा ठहरकर सोचने, समझने की फुरसत किसे है। धीमा चलना तो मानो आज जिंदगी के फलसफे के साथ मेल ही नहीं खाता।'

बल्देव भाई वरिष्ठ पत्रकार हैं। आम तौर पर पत्रकारीय लेखन में तात्कालिकता हावी रहती है। ऐसे में यह चिंता कि देश-समाज का मानस सात्त्विक प्रेरणा से भरे, यह बड़ी बात है। उनकी नई आई पुस्तक में कुल 42 लेख हैं, जिन्हें मूलतः उन्होंने एक अखबार के अपने कॉलम के लिए लिखा है। एक तरफ तो ये लेख जिस दौर और परिवेश में हम हैं, उसको लेकर हमारे मन में कई सवालों को जन्म देते हैं, वहीं दूसरी तरफ ये समाधान बताने की जगह आत्मावलोकन करते हैं। वैसे भी अध्यात्म बाहर निहारने से ज्यादा खुद को अंदर से बुहारने की ही प्रेरणा देता है। आत्म शुचिता इसलिए भी जरूरी है कि इससे विवेक का धरातल ऊपर उठता है। यह ऊँचाई आज हम कहीं न कहीं खो रहे हैं। नतीजा यह कि लोक पर्व, परंपरा और अन्य सांस्कृतिक अनुष्ठान के जो अवसर हमें सकारात्मक ऊर्जा से भर दिया करते थे, वे बस फन और सेलिब्रेशन बनकर रह गए हैं।

बल्देव भाई ने इस पुस्तक में शामिल अपने कई लेखों में यह बात कही है कि हमें अपने लोक और संस्कार से जुड़ने की जरूरत है। अपने एक लेख में वे इस दरकार को कुछ यूँ बयाँ करते हैं, 'आज का दौर जिस तरह व्यक्ति को आत्मकेंद्रित बना रहा है और अकेलापन उसकी नियति बनता जा रहा है कि सबके बीच रहकर भी अपने मन का दुःख-सुख बाँटने को छटपटाता रहता है। इसी छटपटाहट और अलगाव को पाटने के लिए यूरोपीय समाज से निकलकर फ्रेंडशिप डे और फ्रेंडशिप बैंड जैसी अवधारणाओं का चलन हमारे यहाँ शुरू हुआ है। ये तो बीमारी पनपने के बाद शुरू किए गए उपचार जैसे हैं, लेकिन हमारे यहाँ तो मन और जीवन बुराइयों, बीमारियों और विकारों की गिरफ्त में ही न आए इसकी पूर्व सावधानी (प्रिकॉशन) ज्यादा रखी गई। इसी को अध्यात्म कहा गया है।' कहने की जरूरत नहीं कि पुस्तक 'आध्यात्मिक चेतना और सुगंधित जीवन' के लेखक को साफ लगता है कि भारतीय सांस्कृतिक परंपरा में वे तमाम बीज तत्त्व हैं, जो जीवन की चुनौतियों को सकारात्मक ढंग से स्वीकार करने की सीख देते हैं।

एक बात और जो इस पुस्तक की चर्चा करते हुए कहनी जरूरी है, वह यह कि राष्ट्र का गौरव अवहेलना का नहीं, स्वभाव का विषय बने। यह बात खास तौर पर आज की परिस्थिति में समझने की जरूरत है। भारतीय शास्त्र, परंपरा, मनीषा का सांस्कृतिक वितान इतना बड़ा है कि इसके नीचे सबके लिए प्रेरक आश्रय है। इस महत्त्व को भूलने की नहीं बल्कि बरतने की जरूरत है, यह बात अपनी पुस्तक में बल्देव भाई कई बार दोहराते हैं। एक लेख में उनके शब्द हैं, 'भारत माता की पूजा-अर्चना कोई रोली-चावल से नहीं होगी, न फूल-मालाएँ चढ़ाकर। गीता में इसका बड़ा सरल मार्ग बताया गया है— 'स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दतिमानवाः' यानी अपने कर्मों के द्वारा उसकी अर्चना कर मनुष्य सिद्धि प्राप्त करते हैं। माँ के प्रति संतति के कर्तव्यपालन की निरंतरता ही उसे तृप्त करती है। हमारा सद्गुण-सदाचार से युक्त और स्वार्थ भेद से मुक्त जीवन जीना ही माता की सबसे बड़ी सेवा है।'

दरअसल, 'आध्यात्मिक चेतना और सुगंधित जीवन' एक ऐसी पुस्तक के रूप में हमारे सामने आई है, जो व्यक्ति, समाज और राष्ट्र सबको एक साथ प्रेरक भाव से गले लगाती है, इस आशय के साथ कि विकार और मकार से नहीं बल्कि श्रेष्ठ संस्कार से ही निज का, निज समाज का और अंततः निज राष्ट्र का कल्याण होगा।

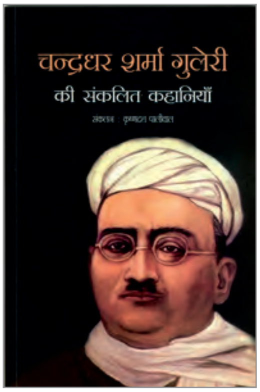

चंद्रधर शर्मा गुलेरी की संकलित कहानियाँ

समीक्षक : **आरती स्मित**

संकलन : **कृष्णदत्त पालीवाल**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली।

पृष्ठ : 68

मूल्य : रु. 110/-

पवित्र प्रेम के चितेरे कथाकार चंद्रधर शर्मा की अमर प्रेमकथा 'उसने कहा था' ने हिंदी साहित्य में उन्हें विशिष्ट स्थान दिलाया। यह प्रेम उनकी प्रायः सभी कहानियों में रह-रहकर उभरता है जिनमें 'बुद्धू का काँटा', 'सुखमय जीवन' और अपूर्ण कहानी 'हीरे का हीरा' शामिल हैं। 'हीरे का हीरा' 'उसने कहा था' का दूसरा भाग-सा प्रतीत होता है किंतु भाव, भाषा, शैली और शिल्प के स्तर पर जो उठान 'उसने कहा था' में है, उसका 'हीरे का हीरा' में अभाव है। कई बार कोई रचना पहले आरंभ होकर भी अपनी यात्रा बहुत बाद में पूरी कर पाती है, कई बार यह यात्रा लेखक को आत्मतुष्टि न दे पाने की स्थिति में अधूरी ही रह जाती है। इस कहानी के साथ भी संभवतः कुछ ऐसा हुआ हो!

गुलेरी जी की उपर्युक्त तीनों पूर्ण कहानियों में कुछ बातें समान हैं, जैसे कि पुरुष पात्र द्वारा प्रेम की उत्कट अनुभूति और प्रेम-निवेदन, अकथ-असह्य व्यग्रता और स्त्री पात्र द्वारा पति के प्रति पूर्ण समर्पण। उनके प्रेम में कहीं भी देह की गंध नहीं है। पत्नी के प्रेम का उत्कृष्ट दृष्टांत 'हीरे का हीरा' है।

'उसने कहा था' में प्रेम का उदात्त और सात्त्विक रूप ही पात्र लहनासिंह को नायकत्व प्रदान करता है, परोक्षतः लहनासिंह सूबेदारिन की स्मृति में 25 वर्ष बाद, उम्र के तीसरे पड़ाव में भी बना हुआ है, यह स्त्री प्रेम की गूढ़ता का परिचायक है। तभी एक झटके में वह जमादार लहनासिंह को पहचान जाती है और उसे 'तेरी कुड़माई हो गई...धत्त– देखते नहीं रेशमी बूटों वाला सालू' वाक्य-मात्र से बचपन के वे सारे मधुर प्रसंग याद दिला देती है। लेखक ने भारतीय स्त्री के आदर्श प्रेम को अपनी सभी कहानियों में स्थापित किया है। यहाँ भी सूबेदारिन पति और पुत्र के जीवन की कामना करती है, मगर इस कामना की डोर सिर्फ लहनासिंह को सौंपती है– बचपन में उग आए भावों का चरम है सूबेदारिन का यह विश्वास कि लहनासिंह उसके कहे की लाज रखेगा और लहनासिंह का उस विश्वास पर कुर्बान हो जाना... अंतिम घड़ी में उन मधुर यादों को जीना। प्रेम का यह अस्फुट रूप ही कहानी को शीर्ष तक ले जाता है। इस कहानी के ताने-बाने में लेखक ने केवल प्रेम ही नहीं बुना, अमृतसर के बंबूकार्ट में इक्केवालों की मीठी बोली को भी गूँथा है जिससे आरंभ से ही कहानी सरस हो उठी है, साथ ही साथ सीमा पर तैनात भारतीय जवानों की जिंदादिली को भी नगीने की तरह सजाया है। हास्य-व्यंग्य का पुट भाषा की ऊबड़-खाबड़ जमीन को चिकनाई देता है। स्थानीय बोलियों का प्रयोग, कहानी की कलात्मकता को नया आयाम देता है।

'बुद्धू का काँटा' संक्षिप्त उपन्यास का कलेवर लिए है। यहाँ मूल कहानी में समाविष्ट अतिरिक्त कहानी नवाब के खानसामे की है, जो सामाजिक असमानता और शोषक-प्रवृत्ति और शोषित-पीड़ा की मीमांसा करती है। कहानी के नायक रघुनाथ के माध्यम से लेखक ने एक ओर सरल व्यक्ति की स्त्री मंडली में हास्यास्पद स्थिति बनते दिखलाया है, वहीं यह भी कि चतुर और सयानी स्त्री भी पत्नी धर्म निभाती हुई पति को अपने से ऊँचा स्थान देकर खुश होती है। कौमार्य में बुद्धू रघुनाथ से छेड़छाड़ करने वाली स्वतंत्र, बहादुर, चुलबुली लड़की जब अचानक उसे पति के रूप में पाती है तो हतप्रभ रह जाती है– "अब इस चक्की में ऐसे ही पिसना है। जनम भर का रोग है; जनम भर का रोना है।" पति के समक्ष समर्पण ही स्त्री का भाग्य है। प्रेम निवेदन करते रघुनाथ द्वारा पास खींचना और स्त्री का पहले के उपहासों के बदले क्षमा-याचना करते हुए ढह जाना इसी समर्पण का द्योतक है। कहानी लंबी होने के कारण कई अनावश्यक प्रसंग भी शामिल हैं। भाषा से खेलना और हास्य-व्यंग्य का तड़का लगाना गुलेरी जी की लेखनशैली का एक हिस्सा है, जो प्रायः सभी कहानियों में उपलब्ध है।

'सुखमय जीवन' साधारण कहानी है जिसमें व्यंग्य का पुट अधिक है। यों कहें कि कहानी में कसाव लाने पर यह व्यंग्य-कथा बन सकती थी। झोलाछाप लेखक पर गुलेरी जी ने शर-संधान किए हैं। प्रेम प्रसंग में, यहाँ भी नायक नायिका कमला के लिए विह्वल हो उठता है और कमला के पिता से वाद-विवाद करता है, किंतु विवाह की बात पक्की होने के बाद ही कमला उस पर आसक्त होती है। लेखक ने कथानायिका में सदैव भारतीय नारी का आदर्श चरित्र दिखाने का प्रयास किया है।

'घंटाघर' लेखक की आरंभिक कहानी है और 'धर्मपरायण रीछ' प्रतीकात्मक कहानी है जिसमें साम्राज्यवाद पर व्यंग्य है।

गुलेरी जी की भाषा पर जो पकड़ है, हास्य और व्यंग्य के संतुलन को बनाए रखने की जो दृष्टि है और इनके बीच अपनी बात कह देने का जो अंदाज है, वही उन्हें अनुपम बनाता है। बतौर कथाकार उन्होंने परंपरागत साहित्य की धरती पर नवचिंतन और प्रयोग के बीज बोए। वे कुछ समय और होते तो साहित्य कुछ अधिक नए कलेवर में होता!

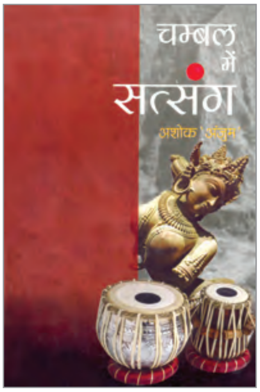

समीक्षक : **यश मालवीय**

लेखक : **अशोक अंजुम**

प्रकाशक : सरस्वती प्रकाशन, देहरादून (उत्तराखंड)।

पृष्ठ : 96,

मूल्य : रु. 150/-

चंबल में सत्संग : एक योद्धा रचनाकार की मुद्रा

रात स्वप्न में दोस्तों
देखे अजब प्रसंग
संसद में मुजरा हुआ
चंबल में सत्संग

इस सदी के सबसे बड़े और जरूरी दोहे के रूप में मैं इस दोहे को देख पा रहा हूँ। वैसे तो समूचा दोहा-संग्रह ही युगसत्य का जिंदा दस्तावेज है, बल्कि यदि यह कहें तो कोई अतिशयोक्ति न होगी कि दोहाकार ने अपने समय की आँखों में आँखें डालकर बातें की हैं। कबीर, रहीम और खुसरो की विरासत को साधकर साथ ले चलना काँटों का ताज पहनने जैसा है। मुझे यह कहने में कतई कोई संकोच नहीं है कि यह ताज न केवल अशोक अंजुम ने गौरव से धारण किया है वरन् हिंदी कविता का स्वाभिमानी माथा कुछ और अधिक प्रशस्त किया है। मुक्तिबोध के शब्दों में कहें तो उन्होंने अभिव्यक्ति के खतरे उठाए हैं। दुस्साहसिक ढंग से बिना लाग-लपेट के अपने दोहों को हथियार की शक्ल में तब्दील कर दिया है। ऐसी स्थिति में उनकी मुद्रा एक योद्धा रचनाकार की मुद्रा जैसी हो गई है। एक लड़ता और जूझता हुआ रचनाकार जब गहरे संवेदनात्मक ताप के साथ कलम उठाता है तो 'चंबल में सत्संग' जैसी कोई कृति संभव हो पाती है। इस प्रकार के रचनाकर्म में उसकी भंगिमा और उसके तेवर महाभारत के अर्जुन जैसे होते हैं। उसे अपने बंधु-बांधवों और बिरादरी वालों पर भी तीर-तलवार चलाने होते हैं। यह दोहा देखें—

कद्दवर कवि मंच पर सुना रहे हैं जोक,
या ढल जा माहौल में या घर लौट अशोक।

सहज ही कल्पना की जा सकती है कि कोई रचनाकार स्वयं कितनी मर्मांतक पीड़ा से गुजरता होगा तब इस तरह के दोहों की रचना करता होगा—

सोने की चिड़िया कहे होकर बहुत उदास,
सब सोना पीतल हुआ जो था मेरे पास।

निश्चित ही 'प्रिया तुम्हारा गाँव' के बाद 'चंबल में सत्संग' का प्रकाशन अशोक अंजुम की सृजनशील दोहा-यात्रा का एक और सार्थक रचनात्मक पड़ाव है।

समीक्षक : **ज्योतिपुंज**

लेखक : **डॉ. गोपाल 'राजगोपाल'**

प्रकाशक : बोधि प्रकाशन, जयपुर।

पृष्ठ : 112,

मूल्य : रु. 80/-

ये दोहे अलमस्त : सभी लाइनें व्यस्त

समकालीन भारतीय साहित्य की छंदोबद्ध रचनाओं में सर्वाधिक लोकप्रिय छंद दोहा माना जाता है या फिर ग़ज़ल। इन दोनों ही विधाओं में कवि अपने कौशल्य से गागर में सागर भरने की चेष्टा करता है। हमारे यहाँ आदिकाल से ही साहित्य में पद्धा-पद्ध रचनाओं का प्राधान्य एवं प्रभाव रहा है, तथा जिस युग में लेखनी और कागज भी नहीं आए होंगे, उस युग का तो संदेशवाहक या उपदेशवाहक एकमात्र श्रुत साहित्य की मौखिक परंपरा में 'दोहा' जैसे छंद ही रहे होंगे। 'मुक्तक छंदों' की लोकप्रियता तो अनादि काल से प्रचलित रही है।

आधुनिक दोहे लेकर आई सद्यः प्रकाशित पुस्तक 'सभी लाइनें व्यस्त' में कवि डॉ. गोपाल 'राजगोपाल' ने पाँच सौ पच्चीस दोहों में वो निर्झरणी बहाई है जो अपनी कथती-बहाव और रूप परंपरा में अग्रणी मानी जा सकती है। दोहा यात्रिक छंद है, मात्राओं के लघुगुणक सिद्धांत के अनुसार उसके बढ़ते-घटते अनुपात से दोहों की गति, लय एवं प्रभाव में असर पड़ता है। वैसे छंद शास्त्रों में दोहे के अनेक भेद तथा लक्षण बताए गए हैं, मगर प्रचलित दोहों में मात्र तेरह-ग्यारह मात्राएँ और अंत में गुरु-लघु के नियम को ही प्रधानता दी गई है। वैसे यह कवि पर निर्भर है कि वह दोहे की खूबसूरती के लिए किस तरह की यति-गति, ताल-लय का प्रयोग करता है। नैसर्गिक प्रवाह डॉ. गोपाल 'राजगोपाल' के दोहे में

स्वाभाविक रूप से आया है जो अपने कथ्य को मजबूत करता है। जैसे–

नदी किनारे घर बने, लिया सोच के प्लोट।
शूकर अड्डा बन गया, रोज लगावे लोट।।
अभी गई थी आ गई, पहली तारीख आज।
टूट पड़ेगी जेब पर, घर वाली की गाज।।

कवि अपने रचनाकर्म के माध्यम से अपने मन की बात कहता है, उसके मन में चुभ रही सामाजिक विद्रूपताएँ, उसे कुलबुलाहट की ऐसी अँधियारी कोठरी में धकेल देती है जहाँ से बाहर निकलने के लिए उसे शब्द शक्ति का सहारा लेकर संभावनाओं के प्रकाश की तरह आगे बढ़ना होता है; बस यहीं वह जो कुछ कह देता है, वह उसका सृजन माना जा सकता है। कवि डॉ. गोपाल 'राजगोपाल' के अनेक ऐसे दोहे इस संकलन में अनायास आ गए हैं, जो अपनी भीतरी घुटन से मुक्त होने का विजय घोष करते-से लगते हैं–

मार झपटा ले गया, वो ग्रीवा से चैन।
शून्य चेतना हो गई रहे ताकते नैन।।
बँटवारे ने खींच दी घर में इक दीवार।
पिक्चर का पर्दा बनी, लगी फिल्म परिवार।।
बेकाबू रफ्तार ने, दी कैसी सौगात।
पलक झपकते मौत ने, दी जीवन को मात।।

कवि डॉ. गोपाल 'राजगोपाल' एक वरिष्ठ चिकित्सक हैं जो सामुदायिक चिकित्सा विभाग के प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष हैं। कविता करना उनकी नियति है मगर व्यावसायिक दृष्टि से यहाँ बेमेल-सा जीवनचक्र होते हुए भी वे आश्वस्त हैं और अपनी भूमिका में वे लिखते हैं–'चिकित्सकीय कार्य और साहित्य सृजन में कैसा सामंजस्य? मैं विनम्रता से स्वीकार करता हूँ कि बुरे व्यक्ति में भी कुछ अच्छाइयाँ हो सकती हैं और इसके उलट अच्छे व्यक्ति में भी कुछ बुराइयाँ हो सकती हैं। आपका फैसला अंतिम और सर्वमान्य है, जिसे किसी न्यायालय में चुनौती देने का प्रावधान नहीं है। मैं चिकित्सा जगत के साहित्यकारों में स्वयं को अंतिम कड़ी के रूप में देखता हूँ। मेरे अग्रज डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी, डॉ. श्याम सखा श्याम, डॉ. श्रीगोपाल काबरा आदि ने हिंदी साहित्य को ऊँचे मुकाम तक पहुँचाया है, उनसे मैं खासा प्रभावित हूँ।'

'सभी लाइनें व्यस्त' दोहा संकलन में अनायास ही वे भी कहीं न कहीं अपने चिकित्सकीय धर्म को तथा सामुदायिक स्वास्थ्य के कर्म को भूल नहीं पाए हैं, यथा–

रग-रग में मधुमेह ने, दी है मिस्री घोल।
लेकिन रसना पर वही, कड़े कड़वे बोल।।
प्रसव को फिर आ गई, वो औरत इस साल।
जिसको पिछली भूल का कितना रहा मलाल।।
एक झलक क्या देख ली, लेकिन उसके बाद।
बीपी था फिर बढ़ गया, केवल उतना याद।।
उल्टी-सीधी दे दवा, छू होते चुपचाप।
आज यहाँ तो कल वहाँ, डॉक्टर झोलाछाप।।

डॉ. गोपाल के ये दोहे जीवन परिवेश की कविता हैं, जन-जीवन की विविध और विराट समस्याएँ, विसंगतियाँ और हालात को मद्देनजर रखते वे हर रोजनामचा पर अपनी संवेदना व्यक्त करते हैं।

पत्नी खुश इस बात पर, कितना सस्ता नेट।
महँगे व्यसन छोड़कर, पी करते हैं चेट।।
रोशन करने आ गया, सूरज फिर से भाल।
गया शाम को पैर पटक, करके चेहरा लाल।।
दारोगा जी कह रहे, सौ का है चालान।
दे दे नोट पचास का, आगे रखना ध्यान।।

जीवन के पग-पग पर आने वाले संदेश, अनुभव तथा संवेदनाओं के साथ दोहाकार का तारतम्य यथासमय बैठ जाता है, समाज हो, शहर हो, गाँव हो या देश हो, पर्यावरण हो, स्वास्थ्य हो, प्रेम हो, वात्सल्य हो, झूठ हो या सोच हो, सभी विषयों पर कलम चलाई है डॉ. गोपाल ने।

उनकी भाषा सरल तथा सहज है। जहाँ व्यंजना की आवश्यकता लगी, वे व्यंजना से बात करते नजर आते हैं तो जो काम अभिधा या लक्षणा से चल सकती है, वे उसी भाषा में बात करते हैं।

डॉ. गोपाल 'राजगोपाल' के ग़ज़ल संकलन 'जख्म जब भी दो चार भरते हैं'; के बाद यह उनकी दूसरी मुक्तक काव्य की कृति पाठकों और श्रोताओं को और ज्यादा रोमांचित करेगी तथा कुछ दोहों को तो स्मरण करने को उद्यत करेगी।

ये दोहे सामाजिक समरसता, मानवीय मूल्यों तथा शांति और प्रेम को बढ़ाने में अवश्य मददगार सिद्ध होंगे।

बोधि प्रकाशन के आकर्षक कलेवर के साथ प्रस्तुत दोहा संग्रह अवश्य ही मील का पत्थर साबित होगा तथा जनमानस में अपनी गहरी पैठ करेगा।

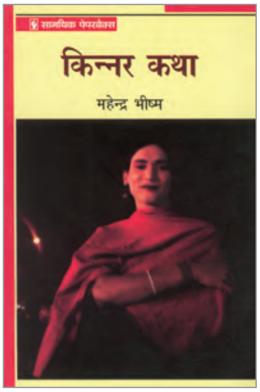

किन्नर कथा

समीक्षक : **डॉ. कविता भट्ट**

लेखक : **महेंद्र भीष्म**

प्रकाशक : सामयिक बुक्स

दरियागंज, नई दिल्ली- 110002

पृष्ठ : 192

मूल्य : रु. 150/-

अनेक साहित्यिक संस्थानों के संरक्षक, संस्थापक तथा विविध पुरस्कारों से सम्मानित उत्कृष्ट उपन्यासकार-कथाकार एवं विधिवेत्ता श्री महेंद्र भीष्म द्वारा लिखित लोकप्रिय उपन्यास 'किन्नर कथा' पढ़ने का सुअवसर प्राप्त हुआ। पढ़ने के पश्चात् उसकी मुख्य विषय वस्तु मन में गहनता से अंकित हो गई। ऐसा प्रतीत होता है कि संवेदनशील लेखक ने किन्नरों की विविध पीड़ाओं को अत्यंत निकट से दृष्टिगत करके तथा अध्ययन के उपरांत शब्द चित्र खींच दिए हों। परिणामतः यह उपन्यास पाठक के मन को किन्नरों की असीम पीड़ा को अनुभव करते हुए झकझोरकर रख देने की क्षमता रखता है। वस्तुतः लेखक उपन्यास के प्रारंभ से अंत तक पाठक को भावों की सरिता में विप्लावित करने की क्षमता के परिपूर्ण हैं। इस क्षमता के साथ ही वे किन्नरों की समस्याओं को भी अद्भुत शब्द-चितेरे के रूप में चित्रित करते चले जाते हैं।

'पुरुषो वाव सुकृतं' अर्थात् मनुष्य योनि परमात्मा या प्रकृति की सर्वोत्तम रचना है। शेष सभी भोग योनियाँ हैं; मात्र मानव देह में ही जीव प्रारब्ध कर्मों को भोगते हुए, भविष्यकालीन जन्मों को सुधारने की क्षमता रखता है; परंतु सुंदरतम रचना तब ही कही जाएगी, जब वह पूर्ण हो। जबकि ईश्वर की अपूर्ण रचना अर्थात् किन्नर या हिजड़ा क्या ईश्वर की सर्जन-क्षमता पर प्रश्न नहीं उठाता?

उपर्युक्त प्रश्नों के ही समान न जाने कितने प्रश्नों से पाठक की बुद्धि का उद्दीपन करते हुए लेखक किन्नर समाज की अनेक ज्वलंत समस्याओं का चित्रण करते हुए संबंधित समाधान भी प्रस्तुत करते चले जाते हैं। मैं ऐसा मानती हूँ कि यदि दार्शनिक दृष्टि से विचार करें, तो सामान्य रूप से मानव की व्यथाएँ तद्जनित हैं, या यह कहा जा सकता है कि इनमें से अधिकांश व्यथाओं के केंद्र में भोगवाद और असंतुष्टि है। कारण है— असीम इच्छाएँ; किंतु मानव जाति का एक वर्ग ऐसा भी है जिसकी पीड़ाएँ तद्जनित नहीं, अपितु किसी क्रूर परिहास का परिणाम हैं। क्रूर परिहास कर्ता को प्रकृति या ईश्वर आदि, जिस किसी संज्ञा से अभिहित किया जाए, किंतु भोक्ता एक ही है; और वह है किन्नर शरीरधारी। किन्नर, जिन्हें थर्ड जेंडर और जनसामान्य में हिजड़ा कहकर संबोधित किया जाता है। मानव समाज तथाकथित चरम विकास के युग में प्रवेश करके स्वयं को गौरवान्वित अनुभव कर रहा है, किंतु समाज का किन्नर वर्ग अभी भी इस मुख्यधारा से नहीं जुड़ सका है, कारण अनेक हैं, किंतु मूल कारण है जनसामान्य की इस वर्गविशेष के प्रति हेय मानसिक अवधारणा। इस अवधारणा का चित्रण लेखक ने विषय के मूल में रखे गए एक चरित्र सोना उर्फ चंदा के माध्यम से किया है; जो अत्यंत सुंदर है और मात्र उसकी कंठध्वनि ही उसके किन्नर होने को प्रमाणित करती है; अन्यथा वह कहीं से भी किन्नर प्रतीत नहीं होती। सोना की किन्नर देह के कारण राजघराने में जन्म लेने के उपरांत भी वह बहुत ही हेय जीवन जीने को विवश होती है। वस्तुतः जन्म के समय इसका नाम सोना रखा गया था और इसकी एक और जुड़वाँ बहन भी थी। सोना के पिता ने लोक-लाज के कारण उसकी हत्या का कार्य अपने दीवान को सौंप दिया, किंतु उसने दया-विभोर होकर सोना को तारा नामक किन्नर गुरु को सौंप दिया। इसके उपरांत सोना का नाम चंदा रख दिया जाता है। वही चंदा संयोगवश पंद्रह वर्ष के पश्चात् अपनी जुड़वाँ बहन के विवाह में पहुँचती है।

कथानक में यदि भाव पक्ष की बात की जाए तो अधूरी देह होने की पीड़ा, सामाजिक उपेक्षा, पारंपरिक एवं पारस्परिक संघर्ष, अवसाद तथा विद्वेष आदि जैसे नकारात्मक भावों को दर्शाते हुए लेखक किन्नर समाज की पीड़ा को चित्रित करने में उत्कृष्ट लेखनी का परिचय देते हैं। केवल नकारात्मक ही नहीं सकारात्मक दृष्टि से भी लेखक किन्नर मन के भावों को चित्रित करने में सफल रहे हैं। वे चंदा के जीवन में आए प्रतिष्ठित परिवार के एक पुरुष मनीष के माध्यम से प्लुटोनिक लव या आध्यात्मिक प्रेम को भावों की पराकाष्ठा तक चित्रित करते हैं। प्रेम के विविध पक्षों यथा— हर्ष, रोमांच, विह्वलता, करुणा, आदर्श, समर्पण तथा व्यक्तिगत एवं सामाजिक उथल-पुथल आदि को बड़ी ही सुंदरता के साथ प्रस्तुत किया है।

कला पक्ष की दृष्टि से उपन्यास की भाषा शैली, रूपरेखा एवं विषय-वस्तु की बात की जाए तो अधिकांशतः तत्सम शब्दों से सुसज्जित और प्रवाह से युक्त है। रूपरेखा सुनियोजित एवं सुसंगठित है। विषय-वस्तु प्रासंगिक एवं ज्वलंत मुद्दों से युक्त है और बारंबार पढ़ने की रुचि जगाता है।

समाज में किन्नरों की स्थिति को सुधारने के लिए यह प्रकाश स्तंभ का कार्य करेगा और साहित्यिक सुधीजनों के मध्य साहित्यिक-बौद्धिक अभिरुचि उत्पन्न करने वाला मील का पत्थर सिद्ध होगा।

साररूप में कहा जाए तो यह उपन्यास पढ़ना साहित्यिक रसास्वादन के साथ ही एक अनूठा सामाजिक शिलालेख भी प्रस्तुत करता है। इसे पढ़ना अत्यंत उत्तम अनुभव सिद्ध होता है।

समीक्षक : **अनिता मंडा**

लेखक : **विनय मिश्र**

प्रकाशक : बोधि प्रकाशन, जयपुर-302006

पृष्ठ : 124

मूल्य : रु. 200/-

इस पानी में आग
(दोहा संग्रह)

दोहे छंद में संवेदना अभिव्यक्ति की अपार क्षमता होने के कारण यह आकार में लघु होते हुए भी हिंदी छंदों में सर्वाधिक लोकप्रिय है। जिस प्रकार उर्दू में एक शेर में ही बहुत बड़ी बात कह दी जाती है, उसी प्रकार हिंदी में एक दोहे में ही बड़ी गूढ़ व वैचारिक बात को सूक्ष्म संवेदना के साथ अभिव्यक्त करने की क्षमता है।

दोहे की विकास यात्रा लगभग एक हजार वर्ष की है जिसमें कई परिवर्तन समय के साथ आए। सर्वप्रथम दोहे में ही तुक मिलाने का चलन हुआ। प्रथम 'दोहाकोश' सिद्ध सरहपाद का आठवीं शताब्दी में मिलता है। इसलिए इनको प्रथम दोहाकार मानते हैं। आगे चंद बरदाई और अमीर खुसरो से यह विधा फलित हुई। जायसी, तुलसीदास ने भी न्यूनाधिक इस छंद को सँवारा।

'सूफी कवियों ने प्रेम, भक्ति और लोक-चेतना के माध्यम से दोहा छंद को अत्यंत आत्मीय बना दिया था, वहीं पंद्रहवीं शताब्दी में निर्गुण भक्ति-धारा के क्रांतिकारी कवि कबीरदास ने दोहे को लोक-छंद बना दिया।'– ऐसा 'दोहा-लेखन' आलेख में हरेराम समीप जी का कहना है।

जहाँ भक्तिकाल में दोहे मुख्यतः भक्ति व नीति का कथ्य समाहित किए हुए थे, वहीं रीतिकाल में श्रृंगारिक दोहे भी बहुत लिखे गए। रहीम, कबीर, वृंद, बिहारी के माध्यम से दोहे ने जिस ऊँचाई को छू लिया, उसके सामने उससे बड़ी लकीर खींचना किसी के बूते की बात नहीं थी; परंतु आज दोहा लेखन में बहुत विस्तार हुआ है, समकालीन समाज में बढ़ती विद्रूपता और राजनीति की घात-प्रतिघातों तथा बाजार, भूमंडलीकरण, सूचना संस्कृति सभी ने दोहे को नव्यता प्रदान की है। शोषक-शोषित, आशा-निराशा, पारस्परिक व्यवहार का दोगलापन सभी कुछ समकालीन दोहों का विषय है।

'दोहे की वापसी' आलेख में– भारतेंदु मिश्र जी का कथन है– 'आज का दोहा संसद से सड़क और गलियारों से होकर सुदूर गाँव की पगडंडी से, खेतों-खलिहानों व चौपालों तक से समान रूप से जुड़ा है। गृह-रति-व्यंजक, पारिवारिक बिंब भी नये दोहे की मौलिक भूमि कहे जा सकते हैं। जिन दोहाकारों के स्वतंत्र दोहा संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं उनके अतिरिक्त कुमार रवींद्र, योगेंद्र दत्त शर्मा, हरीश निगम, यश मालवीय, शरद सिंह, कुँअर बेचैन, राजेंद्र गौतम, राम बाबू रस्तोगी, कैलाश गौतम, गंगा प्रसाद शर्मा, माहेश्वर तिवारी, विज्ञान व्रत, उर्मिलेश, भगवान दास एजाज़, रमा सिंह, विद्या बिंदु सिंह आदि भी सार्थक दोहाकारों की सूची में शामिल किए जा सकते हैं।'

'इस पानी में आग' दोहा संग्रह है विनय मिश्र जी का जिसमें समकालीन यथार्थ और लोक-संचेतना को व्यक्त करने की जिम्मेदारी कवि ने वहन की है।

रामकुमार कृषक जी ने लिखा है कि 'विनय पाठकों और श्रोताओं से महज बौद्धिक आत्मालाप नहीं करते हैं, उनसे वह सिर्फ संवेदनात्मक संवाद करते हैं।'

संग्रह में कुल 705 दोहों को कवि ने पाँच संवादों में बाँटा है। 'समय-संवाद' पहला अध्याय है जिसमें कि आधे से ज्यादा (373) दोहे हैं, 'स्मृति-संवाद' में 49 दोहे, 'प्रकृति-संवाद' में 127 दोहे, 'आत्म-संवाद' में 111 और 'प्रतिवाद' में 45 दोहे हैं। इस तरह से अलग अलग कथ्य के हिसाब से दोहे रखना कवि की मेहनत और सूझबूझ दिखाता है, एक और सुविधा है कि दोहों के साथ संख्या लिखी गई है, जिससे कि उल्लेख में आसानी है कि कितने नंबर के दोहे की बात हो रही है।

विनय जी एक बेहतरीन ग़ज़लकार तो हैं ही, अछांदस कविताओं में भी अपनी उपस्थिति दर्ज करवा चुके हैं और अब दमदार दोहों के साथ दस्तक दी है। इन दोहों में शब्द चमत्कार मात्र न होकर भावानुभूति की गहनता है। भाषा, शैली व कथ्य में संतुलन दिखाई देता है, कथ्य में नव्यताबोध व पैनापन भी विद्यमान है, नई भाषा के साथ विनय जी पाठकों से संवाद कायम कर सके हैं।

वर्तमान समय की दशा का उल्लेख पहले ही पृष्ठ पर देखिए–

कैसे होगा झूठ का, बोलो पर्दाफाश।
सच कहते ही पेड़ पर, टँग जाती है लाश।।2।।

दोहों की भाषा मुहावरेदार होने से पाठक का आनंद दुगना हो जाता है, साथ ही बिंब जो दृष्टिगोचर हुआ है, अद्‌भुत है–

हरदम रहती जिंदगी, अपनों से हैरान।
जूता काटे पाँव को, सोना काटे कान।।3।।

विसंगति को दर्ज करता एक आला दर्जे का दोहा देखिए–

दुखिया गलियों में करे, जूठी पत्तल साफ।
लेकिन लाखों में बिका, उसका फोटोग्राफ।।4।।

एक बिंब देखिए कितनी संवेदना लिए हुए है, कहन में वक्रता देखते ही बन रही है–

कुछ तो है कि धूप में, काँप रहा है ताल।
एक मछेरा पास ही, सुखा रहा है जाल।।11।।

बढ़ते शहरीकरण पर कवि की चिंता किस तरह उभरी है–

जिन खेतों में थी कभी, फसलों की मुस्कान।
उन खेतों में उग रहे, अब दिन-रात मकान।।12।।

अपने परिवेश से आज का आदमी किस कदर कटा हुआ है, इसकी एक झलक देखिए–

मेरे घर के सामने, कुचल गया मासूम।
अगले दिन अखबार से, मुझे हुआ मालूम।।15।।

यह युग व्यंग्य, विडंबनाओं और विसंगतियों की अभिव्यक्ति का युग है। समकालीन कविता का केंद्रीय भाव भी यही है। विनय जी स्वयं लिखते हैं– 'कविता आमजन से संवाद नहीं कर पाती है, तो यह केवल समीक्षा का ही नहीं, चिंता का भी विषय है।'

इच्छा ही दुःख की जननी है, यह गंभीर चिंतन भी कितनी सहजता से प्रकट किया है, सराहनीय है–

जीवन में यूँ ही नहीं, मचा हुआ कुहराम।
मन के थकने हुए, चाहों के गोदाम।। 27।।

देश के राजनीतिक हालात को बयाँ करते बेहतरीन दोहे देखिए, यह दक्षता गहरे अनुभव के बिना नहीं आ सकती–

सुनकर सिर धुनता रहा, संसद की तकरीर।
छोटी बातों पर हुई, बहस बड़ी गंभीर।।31।।
राजनीति के नाम पर, ऐसी बिछी बिसात।
लोकतंत्र खाता रहा, यहाँ मात पर मात।।34।।
अपराधी रचने लगे, संसद में कानून।
संसद में ही हो रहा, लोकतंत्र का खून।।41।।

वर्तमान जीवन की आपाधापी का चित्रण बड़ी सटीकता से हुआ है–

कब हो जाती है सुबह, कब हो जाती है शाम।
महानगर की जिंदगी, जाने ना आराम।।66।।

कुछ दोहों में दार्शनिक पुट भी आकर्षित करता है–

फुर्सत हो तो नींद की, देखे कोई बाट।
दो दिन का मेला यहाँ, कौन बिछाए खाट।।249।।

पुरुषार्थ का संदेश देता यह दोहा नायाब है, यही सकारात्मक सोच समाज की मार्गदर्शक होगी।

भले धुँधलके में रखे, वो सूरज की बात।
हमको अपने हाथ से, गढ़ना होगा प्रात।।371।।

मिथकों का सुंदर प्रयोग कहन को प्रभावी तो बनाता ही है, सुंदर प्रसंग भी उभरकर आते हैं–

क्या देखा था राम ने, खाये जूठे बेर।
शबरी को इतना दिया, फीके पड़े कुबेर।।377।।

प्रकृति अपने अनूठे रूप में सामने आई है, जिसमें जीवन साँस ले रहा है। यहाँ साँझ का मानवीकरण अनूठा है–

अपने ही अंदाज में, करती है आराम।
दिन का इक कश खींचकर, धुआँ उड़ाती शाम।।431।।

अपरिग्रह की अनूठी सीख–

पंछी को भी है पता, यह जीवन का नेम।
जितना पानी चोंच में, केवल उतना प्रेम।।446।।

नवगीत के बाद लोकजीवन दोहों में ही संपूर्णता से कथ्य बना है व संवेदना समाहित कर कुछ नवीन कहने में सफल रहा है।

अंततः निष्कर्ष रूप यह है कि प्रस्तुत दोहा संग्रह 'इस पानी में आग' में कवि 'विनय मिश्र जी' की युग-चेतना, राजनीतिक, सामाजिक विसंगतियों पर वक्र दृष्टि, अतीत की विरासत पर स्मृति की ताकत से वर्तमान को आगाह करती सोच दिखाई देती है। कहीं प्रकृति के माध्यम से जीवन का बुनाव है, कहीं स्वयं से संवाद है तो कहीं रचनात्मक तरीके से परिवर्तन के पथ पर चलने का आवाहन है। दोहा संग्रह के फ्लैप पर रामकुमार कृषक जी ने लिखा है कि 'लोक-जीवन और लोक-संस्कार की उन्हें गहरी समझ है, और उनकी अभिव्यक्ति का माद्दा भी।' संपूर्ण पुस्तक त्रुटिरहित है, और आकर्षक भी। विनय जी का यह प्रयास सार्थक एवं प्रशंसनीय है। इस कृति का कविता जगत में स्वागत है।

मन व्यथा का सच– मैं सागर सी

समीक्षक : **शिव डोयले**
लेखिका : **मंजूषा मन**
प्रकाशक : पोएट्री बुक बाजार प्रकाशन, लखनऊ।
पृष्ठ : 96
मूल्य : रु. 140/-

साहित्य की विधाओं में से हाइकु मात्र सत्रह वर्ण का जापानी छंद है, जिसमें पाँच, सात, पाँच में त्रिपदिक वृत्त में किसी भाव को बाँधना कौशल कवि कर्म है। हाइकु अब काव्य विधा में लोकप्रियता की ओर अग्रसर होता जा रहा है।

हाइकु देखने में लघु परंतु अर्थ में गहन होते हैं। कम शब्दों में सार्थक प्रस्तुति है। इस विधा में काव्य साधना में रत प्रतिष्ठित कवयित्री मंजूषा मन का हाइकु-ताँका संग्रह 'मैं सागर सी...' प्रकाशित हुआ है, जिसमें विधा-वैविध्य है, जीवन जगत् का बहुआयामी चित्रण समाहित है,

जिन्हें मन के हर भाव पर रचे 405 हाइकु एवं 40 ताँका हैं। हाइकु को पाँच खंड में विभक्त किया गया है– प्रथम खंड में 'करूँ वंदन', द्वितीय में 'पीर हमारी', तृतीय में 'प्रकृति रूप', चतुर्थ में 'मन के नाते', पंचम खंड 'सागर मन' शीर्षक लिखे गए हैं।

प्रथम खंड 'करूँ वंदन' से शुभारंभ किया गया है– 'प्रथम पूज्य/लंबोदर गणेश/शुभागमन।'

इस खंड में 21 हाइकु हैं जब शुभ शुरुआत शुभ संकेत लगा कामना करती है–

'गीता सुना दे/कृष्ण अब मुझे भी/जीना सिखा दे।'

द्वितीय खंड 'पीर हमारी' सबसे बड़ा खंड है जिसके शीर्षक से ही अंदाज लग जाता है कि इसमें मन जी के जीवन के खट्टे-मीठे अनुभव की अनुभूति होगी। कहीं दर्द की कसक है तो कहीं व्यथाएँ बोलती हैं–

'यह जीवन /किस तरह बाँचूँ/ कोरा कागज।'

'गीली लकड़ी/बन धधकी साँसें/जली न बुझी।'

इस प्रकार के हाइकु सच का बयान हैं; जिन्हें लिखने में बनावट, अनावश्यक शाब्दिक वाग्जाल से परे सहज गांभीर्य भावों से लिखे हैं, भावनाएँ मचलतीं रहीं, सुख-दुःख की भाँति तट से पाने की आस में खाली दुखी हो लौट आती है, तभी तो सार्थक शीर्षक दिया– 'मैं सागर सी...' कवयित्री का कोमल हृदय 'मन' आपदाएँ, विपदाएँ सहन करता है–

'मैं सागर सी/गहरे राज छुपा/मोती लुटाऊँ।'

'शब्द-संसार/ एक यही है मेरा/ जीवन सार।'

अतीत की मधुरिम यादें कैलेंडर की तरह सहेजे हुए शब्द संसार में खो जाती हैं, दर्द की, वियोग की स्मृतियाँ, संघर्षशील, संवेदनाओं को प्रेम व्यथा में टूटता जीवन आँसू की स्याही से लिखे गए हैं, मार्मिक भावपूर्ण हैं, यथा–

'उमर भर/पीते ही रहे आँसू/ प्यासे ही रहे।'

'प्यासा था मन/आँसू खूब मिले हैं/पीने के लिए।'

'जीवन गाथा/लिखी आँसू की स्याही/न बाँची जाए।'

आहत हृदय, टूटते सपनों में भी आशा की किरण, जीने की चाह, कुछ खोकर पाने की लालसा प्यार भरे शब्दों में अपनापन मिल जाए, वंदनवार सजाकर स्वागत को आतुर है। सूखी धरा हरी हो जाए की चाहत इन हाइकुओं में देखी जा सकती है–

'फूलों की चाह/काँटों संग हमने/किया निबाह।'

'स्वाति की बूँद/एक जो मिल जाती/मोती गढ़ते।'

'रूमाल नहीं/दो मीठे बोल चाहें/भीगी पलकें।'

'मन साँकल/खोलो तुम आकर/सुख के पल।'

'भरे उड़ान/आसमान की ओर/पाएँगे छोर।'

उपर्युक्त हाइकु के बिंब और प्रतीक मन को छू जाते हैं। छोटी छोटी खुशियों को रेजगारी की तरह व्यक्त करती, जुलाहे की तरह बुना गया ताना-बाना आदि ऐसे हाइकु जिनका सौंदर्य, मौलिकता अनूठी है। कहीं-कहीं दार्शनिक भाव से रचित हैं–

'ताना-बाना ये/कैसे बना जुलाहे/मुझे सिखा दे।'

'प्रकृति रूप' तृतीय खंड में है जिसमें भोर, किरण, वृक्ष, सूरज, चाँद आदि को लेकर हाइकु रचे गए हैं, जिनमें मानवीकरण भी दिखाई देता है, उदाहरणार्थ–

'प्यासी धरती/फल न फूला कुछ/मन बंजर।'

'चाँदी की प्याली/दूध से लबालब/मुन्नी मचली।'

'झील में चाँद/ज्यों लगे बड़ा प्यारा/प्यार तुम्हारा।'

प्रेम-प्यार में डूबी भावनाएँ एक असीम आनंद को व्यक्त करती हैं। प्रेम में बिछोह दुःख देता है। चतुर्थ खंड 'मन के नाते' रिश्तों से जुड़ता है। बेटी, मायका, ससुराल, माँ, ममता, रिश्ते-नाते, प्रेम आदि कहीं-कहीं संदेश की तरह आगाह करते, सचेत करते हैं–

'नाता कागजी/क्यों निभाते तुम/तोड़ो इसे भी।'

'माँ का आँचल/धुआँ हो या बारिश/बचाए सदा।'

इस प्रकार की बात भुक्तभोगी ही कह सकता है, अनुभव की कलम से लिखा गया है। पंचम खंड में 'सागर मन' शीर्षक को नई उम्मीद आशावादी विचारों की सहज अभिव्यक्ति है–

'पंख पसारूँ/एक बार उड़ के/नभ निहारूँ।'

'दुआ कुबूल/नया साल लाएगा/नए ही फूल।'

टूटे मन को जुड़ जाने की उमंग नई दिशा का बोध कराती है, सच है, आज नहीं तो कल सुखद दिन आएँगे। हाइकु के पश्चात् पुस्तक में चालीस ताँका छंद लिखे गए हैं जो 5-7-5-7-7 का वर्णिक छंद होता है। कवयित्री ने ताँका भी भली प्रकार रचे हैं, इनमें रचनाकार का स्वाभिमान दिखाई देता है, दर्द को भी सुख की तरह अंगीकार करना उसका आत्मबल नारी का हौसला तारीफ के काबिल है–

'आँखों को मेरी/एक तो स्वप्न दे दो/पूरा जीवन/जी लूँ इस चाह में/सच हो ये सपना।'

कवयित्री का जीवन संघर्षों से भरा है। वह इतनी थक चुकी है कि सुख-सुविधाएँ मुफ्त में भी मिलें तो स्वीकार नहीं। खुद्दारी को इस प्रकार ताँका में पढ़ा जा सकता है–

'भले कष्ट हो/सुख न लूँ भीख में/सह लूँ दुःख/खुश रह लूँ ऐसे/दुःख में भी सुख ज्यों।'

'आँखों को मेरी/एक तो स्वप्न दे दो/पूरा जीवन/जी लूँ इस चाह में/सच हो ये सपना।'

मैं सागर सी... कृति हाइकु विधा की श्रृंखला में एक विशेष स्थान पा सकती है। रचनाएँ पाठकों के मन में छवि छोड़ने में समर्थ हैं, स्तरीय हैं, हल्कापन एवं कोरी कल्पना से नहीं रची गई हैं। एकाकीपन

की पीड़ा, टूटे मन की व्यथा को अनुभव की कलम से लिखा गया है। यथार्थपरक रचनाएँ सदैव प्रभावकारी होती हैं। मंजूषा मन ने इन्हें जी कर लिखा है, जिजीविषा है, एक प्यास की ललक प्रेम की आकांक्षाओं ने पुस्तक का रूप लिया है। सागर-सी गहराई में खोजने की कोशिश है, मोती मिलना तय है।

कृति में हाइकु के साथ दिए गए चित्र रेखांकन सुंदर हैं, जो चार चाँद लगा देते हैं। आवरण पृष्ठ मनमोहक है जिसमें नारी मन का सागर-सा फैलाव दिखाई देता है। चित्र रंग का संयोजन खूबसूरत है। मुद्रण भी साफ-सुथरा है।

संग्रह से हिंदी हाइकु साहित्य समृद्ध होगा, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। पाठकों को अवश्य पसंद आएगा।

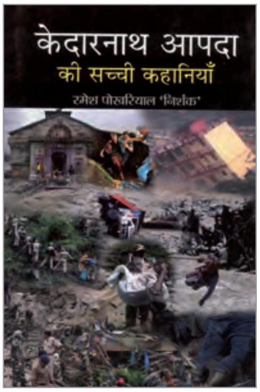

समीक्षक : **दिनकर कुमार**

लेखक : **रमेश पोखरियाल निशंक**

प्रकाशक : प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली।

पृष्ठ : 144

मूल्य : रु. 200/-

केदारनाथ आपदा की सच्ची कहानियाँ

16 और 17 जून, 2013 की रात केदारनाथ के ऊपर से आए सैलाब ने उत्तराखंड के एक बड़े हिस्से को तहस-नहस कर दिया था। हिमालय में ऐसी तबाही कभी किसी ने देखी नहीं थी। पहाड़ ढह-ढहकर गिरते रहे, नदियाँ अपने पूरे वेग से बड़ी-बड़ी इमारतों को मलबों में बदलती हुई अपने साथ बहाती ले गईं। सैकड़ों वर्गमील का इलाका जैसे श्मशान में बदल गया। लोग हतप्रभ थे। न केवल उत्तराखंड में, बल्कि सारे देश में लोग यह जानने को बेचैन थे कि हिमालय जैसी विराट यह त्रासदी क्यों घटित हुई?

उत्तराखंड में पर्यटन बढ़ाने के नाम पर, जलविद्युत के नाम पर पहाड़ तोड़े गए, होटल बनाए गए, बड़े-बड़े बाँध बनाए गए। लोगों ने पहाड़ के ऊपर घर बना लिए। इन सभी का नुकसान हुआ है। आज देशभर में नदियों को जोड़ने की बात जोर-शोर से हो रही है, लेकिन नदी को जोड़ने से ज्यादा नदी को छोड़ना जरूरी है। डैम बनाने के चलते नदियाँ सूख गई हैं। उनका मुक्त प्रवाह बाधित हुआ है। अब जब नदी ही खत्म हो जाएगी, पहाड़ ही नहीं रहेंगे, तो उससे जुड़ा जीवन प्रभावित होगा ही। नदियों को जोड़ा जाए, लेकिन उससे पहले यह सुनिश्चित हो कि उसकी अविरल धारा, निर्मल धारा बनी रहे। पर्यटन के साथ ही स्थानीय लोगों के रोजगार के लिए वन्य औषधियों की खोज, उनकी बिक्री, स्थानीय लोगों को इसका प्रशिक्षण दिया जाए, तो उन्हें रोजगार भी मिलेगा और वे समृद्ध भी होंगे।

केदारनाथ की त्रासदी के करुण पहलुओं को समेटते हुए रमेश पोखरियाल निशंक की पुस्तक 'केदारनाथ आपदा की सच्ची कहानियाँ' प्रकाशित हुई है। इस पुस्तक में कुल 21 अध्यायों के जरिये त्रासदी का आँखों देखा हाल बयान किया गया है।

भूमिका में लेखक ने दावा किया है कि शायद केदारनाथ में आई आपदा के बाद वहाँ पहुँचने वाले वह पहले व्यक्ति थे और आपदा को बिलकुल नजदीक से देखने का अनुभव उन्हें प्राप्त हुआ। उन्होंने लिखा है— 'मैंने अपनी आँखों से वह मंजर देखा है, जिसे कोई व्यक्ति सपने में भी देखने की कल्पना नहीं कर सकता। जान बचाने के लिए मैंने वहाँ लोगों को दौड़ते, चीखते, चिल्लाते हुए देखा है। यत्र-तत्र लाशों का अंबार लगा हुआ था, अपनों को अपने सामने ही काल का ग्रास बनते देख लुटे और ठगे-से लोगों के करुण क्रंदन और विलाप ने मुझे अंदर तक हिलाकर रख दिया था।'

स्वाभाविक है कि लेखक ने तबाही के प्रत्यक्ष अनुभव को इस पुस्तक के रूप में सँजोने का प्रयास किया है। इन कथाओं को पढ़ते हुए पाठकों को केदारनाथ की आपदा के विभिन्न पहलुओं का पता चलेगा। किस तरह संकट की घड़ी में कुछ साधारण मनुष्य भी वीरता पूर्वक लोगों की सहायता करने में जुटे थे तो कुछ स्वार्थी लोग आपदा से भी लाभान्वित होने की कोशिश कर रहे थे— इन बातों का वर्णन इन कथाओं के जरिये किया गया है।

सिर्फ केदारनाथ ही नहीं अपितु बदरीनाथ, गंगोतरी, हेमकुंड साहिब सहित उत्तराखंड के अनेक स्थानों पर भारी तबाही हुई। शायद चारधाम की यात्रा के इतिहास में पहली बार ऐसा हुआ होगा, जब एक साथ चारों धामों के रास्ते बुरी तरह तहस-नहस होकर महीनों तक के लिए बंद हो गए; किंतु केदारनाथ में जन और धन दोनों प्रकार की भारी क्षति हुई, जिसकी भरपाई शायद कभी भी नहीं हो पाएगी। आपदा को आए तीन साल से अधिक वक्त हो चुका है। जिंदगी रुकती नहीं है, इसलिए आपदा पीड़ितों ने भी किसी तरह से खुद को सँभालकर नए ढंग से जीवन की शुरुआत कर दी है। हालाँकि उन अपनों की यादें, जो इस आपदा में सदा के लिए बिछुड़ गए हैं, भुलाई नहीं जा सकती हैं। इस आपदा में मानवीयता के कई उजले तो कई श्याम पक्ष भी सामने आए हैं। कुछ एक घटनाओं को छोड़कर मानवीयता इस आपदा के पश्चात् एकजुट दिखी। पुस्तक में इंसानियत के किस्सों को खास तौर पर रेखांकित किया गया है।

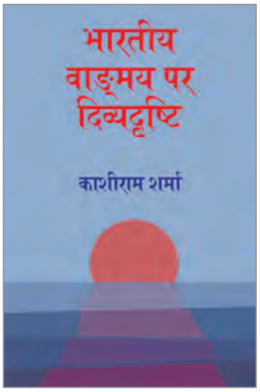

समीक्षक : **पुष्प मित्र**

लेखक : **काशीराम शर्मा**

प्रकाशक : आर्य प्रकाशन मंडल, नई दिल्ली।

पृष्ठ : 255

मूल्य : रु. 400/-

भारतीय वांग्मय पर दिव्यदृष्टि

रामायण, महाभारत, पुराण और बृहत्कथा जैसे गौरवशाली ग्रंथों पर कायम भारतीय वांग्मय का आधार महज किस्से-कहानियाँ नहीं हैं। अगर आप इनकी जड़ें तलाशने की कोशिश करेंगे तो आपको वह दक्षिण भारतीय नाविकों के साहसिक कारनामों की तरफ ले जाएगी। यह आपको बताएगी कि कैसे इन खतरनाक यात्राओं को व्यवस्थित करने के क्रम में उन लोगों ने ज्योतिष शास्त्र की रचना की, जो बाद में भारतीय वांग्मय का आधार बनी।

आर्य प्रकाशन मंडल से प्रकाशित पुस्तक 'भारतीय वांग्मय पर दिव्यदृष्टि' में इन्हीं पहलुओं को विस्तार से बताया गया है। भारतीय संस्कृति के महत्त्वपूर्ण विश्लेषक काशीराम शर्मा ने अपनी इस पुस्तक में कई ऐसी दिलचस्प जानकारियाँ दी हैं जिन्हें पढ़कर आप हैरत में पड़ जाएँगे और भारतीय संस्कृति के प्रतीकों का गूढ़ स्वरूप आपके सामने खुलता चला जाएगा।

अक्षवाट के जरिये साहसिक नाविकों ने कैसे पृथ्वी के भूगोल को सटीक रूप में समझ लिया, यह इस पुस्तक को पढ़ने से समझ में आता है। इस भूगोल से आगे बढ़ते हुए वे वेद, दर्शन, रामायण, पुराण, महाभारत, अलंकार, प्राचीन संस्कृत नाटक, ललित साहित्य आदि की गिरहें किसी वैज्ञानिक की तरह खोलते चले जाते हैं।

एक तरह से यह पूरे संस्कृत साहित्य की मीमांसा है। उसके जन्म और आकार लेने की कथा है जिसे तथ्यों और सूत्रों के जरिये समझाया गया है। यह पुस्तक खास तौर पर उन सुधी पाठकों के लिए है जो भारतीय संस्कृत साहित्य के आधार को समझना चाहते हैं। उसकी बातों के मर्म तक पहुँचना चाहते हैं। उसे रचने वाले मनीषियों के प्रेरणास्रोत का पता लगाना चाहते हैं।

अगर आप संस्कृत साहित्य और भारतीय ग्रंथों का अध्ययन करते रहे हैं और आपको यह अपनी तरफ खींचता है तो यह पुस्तक आपके लिए है। मगर अगर आप इस विषय के नवागंतुक हैं तो इस पुस्तक को पढ़ने-समझने में आपको परेशानी आ सकती है। हो सकता है कि कई संदर्भ आपको उलझा दें। वस्तुतः यह पुस्तक आपसे न्यूनतम जानकारी और काफी धैर्य की अपेक्षा रखती है।

अंत में इस पुस्तक का सबसे बड़ा महत्त्व यह है कि यह आपको उँगली पकड़कर उस दुनिया में ले जाती है जो आपका अनजाना इतिहास है। जिसका जिक्र आपको अन्यत्र शायद ही मिले। इस दुर्लभ पुस्तक से होकर गुजरना एक विरल अनुभव है।

समीक्षक : **संध्या नवोदिता**

लेखक : **नंदकिशोर आचार्य**

प्रकाशक : वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर।

पृष्ठ : 110

मूल्य : रु. 170/- (सजिल्द)

आकाश भटका हुआ

नंदकिशोर आचार्य सुपरिचित कवि हैं। अब तक उनके चौदह कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इसके अलावा आलोचना, नाटक, संस्कृति, शिक्षा, राजनीतिक-आर्थिक चिंतन में उनका खासा दखल है। उनका अनुभव संसार अंतर्राष्ट्रीय फलक का है।

आचार्य जी बहुत कम शब्दों में विचार गूँथने के माहिर हैं। इसके आगे एक मौन रह जाता है मथता हुआ। कविता पढ़कर पाठक कुछ देर अपने में खो जाता है। या शायद वह खुद से मिल जाता है। कुछ कविताएँ तो महज पंद्रह-बीस शब्दों की हैं, पर इनका विस्तार गजब का है—

'गहराई'

'कभी गहराता नहीं है
प्रकाश
तेज जितना हो ले चाहे
गहराई
अँधेरे के हिस्से आई।'

ये कविताएँ मौन की कविताएँ हैं। ये अंतर और अंतस के शब्द हैं। जैसे कुछ खोज रहे हों, या जैसे सब कुछ पा लिया हो। नंदकिशोर आचार्य के शब्दों की उलटफेर चमत्कृत करती है, शब्दों के नए अर्थ खुल जाते हैं। ऐसी कई कविताएँ हैं जिनमें शब्द उदासी का अर्थ देता शुरू होता है और जब वापस आता है तो भाव बदला होता है। कविता का यह वितान मुग्ध करता है।

'अँधेरों में सही'

'न सही
तुम्हारे दृश्य में
मैं कहीं
अँधेरों में सही
दृश्य से थककर
जब-जब मुँदेंगी आँखें
पाओगी मुझे वहीं।'

इन कविताओं की पीड़ा, लगाव हमारा अपना-सा बन जाता है। इनमें गहनता है, आप डूबते-उतराते हैं, कवि के साथ प्रतीक्षा करते हैं, उसकी खामोशी और स्वर दोनों सुनते हैं। बेहद संवेदनशील भावनाओं की यह कविता देखें, जिसके बाद मन भर की आह गूँजती है। क्या होता है प्रेम, कितना गहरा, कितना अकेला करता—

'कितनी भी आवाज़ें हों
गूँजती घने झुरमुट में
वह आवाज़
मैं पहचान लेता था
उसकी ख़ामोशी अब जैसे
आवाज़ हो उसकी
या ख़ामोशी
उसी को सुनने बना हूँ
मैं।'

शब्दों की यह गुँथन इतनी सहज है कि इन कविताओं से अपनापा होने लगता है। ये कविताएँ एक साथ व्यथित करती हैं और राहत भी देती हैं। ये तीर हैं, जो ऐसा बेधते हैं कि 'हाय-हाय' भी दिल में अटककर के रह जाती है—

'हो जाएगा बेघर'

'यह जो ख़ाली दीखता है
घर
ख़ाली नहीं है सचमुच
आ बसा है इसमें
कोई आकाश भटका हुआ
कुछ भी तुम भरोगे
इसमें
वह हो जाएगा बेघर।'

नंदकिशोर आचार्य की कविताओं में शब्दों की शाहखर्ची नहीं है। बस उतने शब्द जितने बेहद जरूरी हों, एक्स्ट्रा के लिए कोई रोल नहीं। इनमें बेतरह लयबद्धता है, आप कविता का शुरुआती सिरा पकड़ते हैं और पूरी कविता लहर-सी भीतर दाखिल हो जाती है। एक अजीब बेचैनी इनका मुख्य स्वर है, या शायद शांति भी। इन कविताओं से गुजरना खुद को नई तरह से महसूस करना है।

संग्रह में सौ से ज्यादा कविताएँ हैं। हिंदी-उर्दू के मेल की सहज भाषा में रची कविताएँ आध्यात्मिक लगती हैं और उतनी ही दुनियादार भी। यही तो सच है। कभी हम खुद को बाहर खोजते हैं, भटकते हैं, कभी भीतर उतरते चले जाते हैं और खुद को वहाँ बिलकुल अलग ही पाकर चकित होते हैं। हम आखिर क्या होते हैं— क्या इन सब का समुच्चय, इनका संतुलन!

ऐसी कविताएँ नंदकिशोर आचार्य होकर ही रची जा सकती हैं, जब समय के विस्तृत आकाश से गुजर चुके हों, जब रफ्तार और ठहराव दोनों में आनंदित हुए हों। आचार्य जी अज्ञेय द्वारा संपादित 'चौथा सप्तक' के कवि हैं। अज्ञेय, निर्मल वर्मा पर इनका बहुत काम है और इनमें एक सहज वैचारिक साम्य लगातार नजर आता है।

समय को अपनी ही तरह से सँजोने वाले इस कवि को जरूर पढ़ा जाना चाहिए। एक और कविता उद्धृत करने का मोह मैं नहीं छोड़ पा रही—

'जब सोयी आग'

'बरसात ने फिर हरे कर दिए
पेड़ वे सारे
निदाघ में जल गए थे जो
ज़ख़्म पर हरे होते हैं
जब सोयी आग
उनमें जाग जाती है
जलता रहता है हरा
अपने को खिलाने में।'

इन कविताओं से गुजरकर राहत मिलती है कि यह हमारी ही पीड़ा का स्वर है, कि हम अकेले नहीं। इनमें प्रकृति गुँथी हुई है। वही है जो हमारे सबसे करीब है। आकाश, धरती, पेड़, बरसात, सूरज, ताल, पाखी... गरज यह कि इन कविताओं में हृदय है उड़ेला हुआ। इनसे गुजरना अपने ही धधकते और धड़कते दिल पर अपना हाथ रखना है। आप रख सकते हो, तो स्वागत।

एक बहुत उम्दा संकलन के लिए कवि जितने साधुवाद का पात्र है, उतना ही इसे शानदार कलेवर, बेहतरीन प्रूफ, नुक्ते तक का खयाल रखते हुए, वाजिब मूल्य में पाठक को उपलब्ध कराने वाला प्रकाशक भी है।

सामाजिक विवेक की शिक्षा

समीक्षक : **संध्या नवोदिता**

लेखक : **शिवरतन थानवी**

प्रकाशक : वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर।

पृष्ठ : 184

मूल्य : रु. 207/- (सजिल्द)

शिक्षा पर अकसर बड़ी-बड़ी बातें, बड़े सेमीनार और लेख लिखे जाते हैं। लेकिन वे गंभीर अकादमिक चिंताओं का हिस्सा बनकर बड़प्पन के ऐसे दायरे में कैद हो जाते हैं, जहाँ आम समाज नहीं पहुँचता।

इस अर्थ में शिवरतन थानवी अनोखा रचते हैं। वे शिक्षा की चिंताओं के केंद्र में सबसे पहले खुद शिक्षक, फिर छात्र और उसके माता-पिता को अनिवार्य तौर पर रखते हैं। उनकी पुस्तक 'सामाजिक विवेक की शिक्षा' हर किसी को पढ़नी चाहिए।

यह एक ऐसी किताब है जिसे आप कहीं से भी पढ़ना शुरू कर सकते हैं। और एक बार पढ़ना शुरू किया तो यह पुस्तक पूरी पढ़े बिना आप नहीं छोड़ पाएँगे।

यह करीब ढाई दर्जन ऐसे लेखों का संग्रह है जो समय-समय पर राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। जाहिर-सी बात है कि ये लेख बहुत प्रासंगिक हैं। इतनी सहज और सरल भाषा में लिखे गए हैं जैसे कोई सामने बैठा बात कर रहा हो।

इसमें छोटे-छोटे दिलचस्प उदाहरण हैं। बड़ी बात भी कहानी की तरह कह देना। इन लेखों के तर्क, तथ्य और विचार सामान्य पाठक में भी रुचि जगा देते हैं।

शिक्षक होना जितना आसान मान लिया गया है, दरअसल है नहीं। शिवरतन जी खुद एक शिक्षक हैं। और एक शिक्षक के तौर पर वे लगातार पढ़ते-लिखते हैं। वह कहते हैं कि शिक्षकों में पढ़ने-लिखने की आदत बहुत कम दिखाई देती है। जबकि जरूरत यह है कि वे ज्यादा से ज्यादा पुस्तकें पढ़ें, अपने व्यवसाय से जुड़ी और दूसरी भी, तभी वे कुशल और योग्य शिक्षक बन पाएँगे और अपने छात्रों में भी पढ़ने की आदतों का निर्माण कर सकेंगे।

इस पुस्तक में शिक्षा, माँ-बाप, छात्र, समाज, सरकारी स्कूल, शिक्षा से जुड़े कानून, डिग्री, शिक्षण ट्रेनिंग, कोचिंग पर सवाल जैसे बुनियादी मुद्दों पर बात है, जिन पर माँ-बाप कभी सोचते ही नहीं।

वे इन सब बातों को ही नहीं, अपने बच्चे के भविष्य को भी बिना किसी तफ्तीश और बहस के यथास्थिति के हवाले कर देते हैं। यह पुस्तक पाठक को रोकती है, और इसे सहज चिंतन का विषय बनाती है।

पढ़ाई अपने आप में नीरसता और बोझिलता का पर्याय बना दी गई है। शिक्षा, शिक्षक, छात्र और समाज की ये तकलीफें अब मुख्यधारा में मुद्दा भी नहीं बनतीं। न कोई शिक्षा के औचित्य पर सवाल उठाता है, न शिक्षक की काबिलियत पर, न शिक्षा के सामाजिक महत्त्व पर।

आज शिक्षा पूरी तरह बाजार की जरूरत के मुताबिक कामगार ही तैयार कर रही है। न ज्ञान से कोई लेना-देना है, न नैतिकता से। ऐसे में शिवरतन जी विश्वासों, अंधविश्वासों और नैतिकताओं की बात करते हैं। आखिर कहीं से तो सवाल उठाने ही होंगे। बहते जा रहे प्रवाह से कभी तो सवाल पूछना होगा।

शिवरतन थानवी अंग्रेजी के अध्यापक रहे हैं। 'शिविर' पत्रिका और 'नया शिक्षक'/'टीचर टुडे' के संपादक रहे। शिक्षा पर उनके लेख बहुत प्रेरक हैं।

इस पुस्तक को पढ़ते हुए शिक्षा से जुड़े तमाम ऐसे नाम जानने को मिले जिनके बारे में कोई अखबार या किताब मुश्किल से ही बताती है। मसलन— गिजुभाई, दयालजी मास्साब, इवान इलिच, जॉन होल्ट, पावलो फ्रेरे आदि।

इनके अलावा शिक्षा के संघर्ष से जुड़े तमाम समकालीन— डॉ. बी.डी. शर्मा, डॉ. बनवारी लाल शर्मा, प्रो. अनिल सदगोपाल, विनोद रैना, अनिल बोर्दिया, रोहित धनकर सहित अनगिनत नाम। यह पुस्तक शिक्षा के भविष्य पर सुनहरे सूर्य के सपने की तरह है जो सचेत पाठक की सारी निराशाएँ दूर करने में सक्षम है।

थानवी जी कहते हैं, गिजुभाई तो इतने महत्त्वपूर्ण हैं कि उनकी किताब हर शिक्षक, छात्र और माँ-बाप को पढ़नी चाहिए और इसे हर पुस्तकालय को रखना चाहिए। लेकिन हम में से कितने लोग गिजुभाई के कामों को जानते हैं? गिजुभाई ने करीब सवा दो सौ किताबें लिखी हैं। जिनमें बच्चों की कहानियाँ, कविताएँ, उनके माता-पिता और शिक्षकों के लिए साहित्य शामिल है। वह कहते थे— "मुझको किसी ने कहा कि भारी-भरकम तात्त्विक लेखों के बजाय यदि मैं कथा शैली में शैक्षिक विचारों को सँजोऊँ तो?" थानवी जी के लेखों में गिजुभाई की यह बात आप प्रत्यक्ष देख सकते हैं।

यह ऐसे लोगों के लिए बहुत जरूरी पुस्तक है जो शिक्षा व्यवस्था में सकारात्मक परिवर्तन के लिए उत्सुक हैं। किताब को पढ़ते हुए आप खुद बहुत सक्रिय समाधान का हिस्सा बनते चलते हैं। कोई किताब ऐसा करे तो आप शब्द की असीम क्षमता का अंदाजा ही लगा सकते हैं।

गागर में सागर समेटे इस किताब की छपाई, कागज, प्रूफ जरा भी शिकायत का मौका नहीं देते। और किताब पाठक के चेहरे पर एक संतोष भरी मुस्कान छोड़ती है।

समीक्षक : **डॉ. पुनीत बिसारिया**

लेखक : **मदनगोपाल सिंहल**

प्रकाशक : एस.के. इंटरप्राइजेस, नई दिल्ली।

पृष्ठ : 160

मूल्य : रु. 200/-

हमारी गौरव गाथाएँ

भारत की सांस्कृतिक विरासत में त्याग, आदर्श, न्यायप्रियता, नैतिकता, धर्मपरायणता और मानवता के गुण चिरकाल से प्राप्त होते रहे हैं। हिंदू धर्म के अनेक जाज्वल्यमान नक्षत्रों ने समय-समय पर अपने इन गुणों के प्रदर्शन से संपूर्ण विश्व को अपना मस्तक इनके समक्ष झुकाने को विवश किया है। अलेक्जेंडर, सेल्यूकस, ह्वेनसांग प्रभृति अनेक विदेशियों ने भारत भूमि के सपूतों के इन महान कृत्यों की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। सुविख्यात लेखक मदनगोपाल सिंहल ने ऐसे ही अनेक नाम-अनाम वीर भारतीय हिंदू महापुरुषों के पावन तथा अनुकरणीय कृत्यों को 'हमारी गौरव गाथाएँ' पुस्तक के माध्यम से हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है। 'न्याय के देवता', 'जीवन के निर्मोही', बलिदान के पुतले', 'नैतिकता के आदर्श' और 'झेलम का मोरचा' खंडों में विभक्त इस पुस्तक के प्रत्येक खंड में राष्ट्रीयता की गौरवमयी गाथाएँ अपने उद्दाम वेग से आपको झंकृत करेंगी।

'न्याय के देवता' खंड में ओरछा नरेश वीरसिंह देव बुंदेला का अपने ही इकलौते पुत्र को उसके अपराध के लिए स्वयं प्राणदंड देना वर्णित है, तो सुकौशल के महाराज द्वारा अपनी महारानी को दंडित करने की कथा है। चित्तौड़ के महाराणा रतनसिंह द्वारा राज्यादेश के अनुपालन में विलंब करने पर अपने ही युवराज को प्राणदंड देने की कथा है तो छत्रपति शिवराज द्वारा शत्रु रानी पर अत्याचार करने वाले अपने सेनापति को कठोर दंड देने का वर्णन है। न्यायाधीश श्रीराम शास्त्री का राघोबा के विरुद्ध निर्भीक न्याय करना न्यायपालिका के सैकड़ों न्यायाधीशों के लिए प्रेरणास्रोत है तो बूँदी नरेश राव रतनसिंह हाड़ा द्वारा अपने इकलौते पुत्र के अपराध के प्रत्युत्तर में पीड़ित से ही उसका वध कराने की भूतो न भविष्यति कहानी कही गई है। राजा सुरपाल के प्रसंग में राजा के मन में आए वासना के विकार का न्याय राजा स्वयं को सजा देकर करते हैं।

'जीवन के निर्मोही' खंड में ह्वेनसांग द्वारा विदेश ले जाए जा रहे धर्मरक्षक ग्रंथों की रक्षा के लिए श्रीहर्ष के बीस सैनिकों द्वारा जलसमाधि लेने का वर्णन है तो वीर बीदा, सामंत संयमराय, मन्ना सिंह, बाजीप्रभु, बानूजी, संत सिंह और निलेकर की कथाओं में अपने स्वामी के प्राणों की रक्षा के लिए स्वयं मृत्यु का वरण करने की लोमहर्षक कथाएँ हैं। कान्ह प्रकरण में मेवाड़ की विजय हेतु आत्मबलिदान का प्रसंग है तो देवायत द्वारा राजकुमार की रक्षा के लिए अपने पुत्र को शत्रुओं की तलवारों के सामने मरण के लिए प्रस्तुत कर देने का कारुणिक चित्रण है। धर्मरक्षक अनाम बालक की कथा में एक अनाम बालक द्वारा सोमनाथ के अपमान का गोरी से बदला लेने की अनोखी कहानी है।

'बलिदान के पुतले' खंड में वचन की रक्षा के लिए प्राणों का मोह न करने वाले पाबूजी, जयदेव और रघुपतिसिंह की कहानियाँ हैं तो भाई के आदेश का मान रखने तथा भाभी के चरित्र की पवित्रता को अक्षुण्ण रखने के लिए वीर हरदौल द्वारा हँसते-हँसते विषपान करने की कथा है। दत्तोजी शिंदे की कथा में राष्ट्रीय भगवा ध्वज की शान की रक्षा करते हुए खुद की बलि दे देने का चित्रण है तो शरणागत विधर्मी की रक्षा करते हुए आत्मबलिदान करने वाले वीर हम्मीर का हठ भी अपने आप में इकलौता प्रसंग है, स्वामी के प्राणों की रक्षा हेतु राजपुरोहित का प्राणोत्सर्ग, अनाम गाड़ीवान द्वारा अपने प्राण देकर भी गुरु तेगबहादुर के शव को लाना तथा पुर्तगालियों को परास्त करने के लिए हजारों मराठा सैनिकों द्वारा आत्मबलिदान करना इतिहास के ऐसे उदाहरण हैं जिनसे हर भारतवासी का मस्तक गर्वोन्नत हो जाता है।

'नैतिकता के आदर्श' खंड में छत्रपति शिवाजी, महाराणा प्रताप और दुर्गादास राठौर की शत्रु की स्त्रियों के प्रति भी आदर की सर्वोच्च नैतिकता चित्रित की गई है तो संन्यासी तीर्थराम द्वारा विदेशी सुंदरी का प्रणय निवेदन ठुकराकर उसे अपनी माँ कहकर संबोधित करना भारतीय प्रज्ञा में ही संभव है। रणक्षेत्र में घायल सैनिक कान्हसिंह प्रसंग में स्वयं जल ग्रहण करने से पूर्व खुद को घायल करने वाले शत्रु मुसलमान सैनिक के लिए जल पिलाने कामाँ से आग्रह है जो इतिहास में शायद ही अन्यत्र मिले। पृथ्वीराज और सूरजमल की कथा में युद्ध क्षेत्र के बाहर इन दोनों शत्रु चाचा-भतीजे का स्नेह प्रदर्शन है जो अत्यंत विरल है। महाराणा राजसिंह प्रथम के मन में अपनी ही प्रजा की एक स्त्री के प्रति विकार आने पर उनका स्वयं को दंड देना अपने आप में अद्वितीय है तो शरणागत विधर्मी अंग्रेज पुरुष-स्त्रियों की रक्षा करने वाले कालाकांकर नरेश हनुमंत सिंह का राष्ट्रभक्ति और शरणागत रक्षा दोनों ही धर्मों को सफलतापूर्वक निभाने का प्रसंग भी अपने आप में अनूठा है, वहीं सत्य की रक्षा करने हेतु अपने गुरु के कहने पर एक कूका द्वारा फाँसी पर चढ़ जाने का चित्र किसी की भी आँखों को नम कर सकता है। 'झेलम का मोरचा' खंड में कैकेयराज पुरु की देशभक्ति, निर्भीकता तथा वीरता की गाथा है तो यूनानियों, शकों, हूणों को देश से बाहर खदेड़ने के प्रेरक प्रसंग हैं।

इस पुस्तक की भूमिका स्वातंत्र्य संग्राम के अप्रतिम योद्धा वीर सावरकर ने लिखी है, जो स्वयं इस पुस्तक के सांस्कृतिक-सामाजिक महत्त्व का द्योतक है। भारतीय संस्कृति, मूल्यों तथा आदर्शों पर गर्व का अनुभव करने वाले प्रत्येक भारतीय को एक बार इस पुस्तक को अवश्य पढ़ना चाहिए।

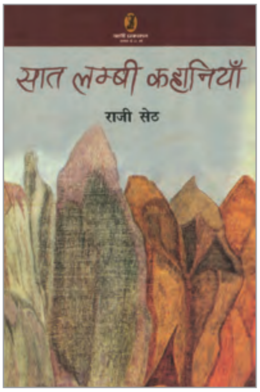

लेखक : **राजी सेठ**

प्रकाशक : वाणी प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली-110002

पृष्ठ : 152

मूल्य : रु. 225/-

सात लंबी कहानियाँ

विगत् शताब्दी के अंत तक हिंदी कहानी में कथा विस्तार के साथ एक नई प्रमेय बनाते जाने का जो विधेय उभरा वह दशकों तक प्रबुद्ध पाठक वर्ग की पसंद बना रहा। इसमें किस्सागोई को दरकिनार करते हुए एक शतरंज की बिसात बिछाई जाती थी और अकसर अकेले ही दोनों ओर से काले और सफेद मोहरे खेले जाते थे। लेकिन राजी सेठ अपनी कहानियों में, अपनी दार्शनिक प्रतिपत्तिकाएँ, जीवन की वास्तविकताओं से रगड़ते-झगड़ते कुछ ऐसी बारीकी से फ्यूजन लाइनिंग में डालकर महीन तुरपन कर देती हैं, जिसे बिना उल्टे-पल्टे आप देख-जान नहीं सकते।

संग्रह की पहली कहानी 'गणित ज्ञान' में ठोस नये गणितीय सूत्र, नई पीढ़ी पुराने मूल्यों की निस्संगता से स्वयं विकसित और अर्जित करती है। कहानी में नेरेटर की रिश्ते की बहन, जो परिस्थितिवश उसके घर रहकर पढ़ाई कर रही है, नेरेटर के पारिवारिक मित्र के निकटतर होती चली जाती है। प्रायः इस युवा साहचर्य को प्रेम नाम से अभिहित किया जाता है, जिसकी भीतरी परत भी कहानी में चुपचाप खुलती जाती है।

नीरा और वासु की निकटता से जो पारिवारिक मान-मर्यादा की समस्या उत्पन्न हो रही है और उसे हल करने के उपाय में जो पुराने तरीके अपनाए जा रहे हैं, उनमें शील है, संकोच और संवेदना भी हैं, जिसमें इस पनप गए रिश्ते की कोमल शिरा का टूटना भी दर्द की तरह लगता है। नेरेटर, नेरेटर की माँ, पिता और मित्र सब इस दर्द की तरह टूटने के सूत्र से बचते हैं। लेकिन नीरा एक वैभवशाली परिवार से आए प्रस्ताव को जिस त्वरा से लपक लेती है, वह पूरे परिवार को हतप्रभ कर देता है। नीरा का यह अर्जित ज्ञान है जिसे प्रयुक्त करता है वह, वहाँ कोई तड़ितबोध नहीं है। कहानी में इसका संक्षिप्त ट्रीटमेंट बड़ी बारीकी से किया गया है।

'यात्रा मुक्त' कहानी शहरीकरण और उदारीकरण के इस दौर में भी प्रासंगिक है। छोटे शहरों, कस्बों में अब भी ऐसा घटित होता रहता है। सामंती निष्ठाओं से बँधे चरित्र जैसे किशना का बापू तो सामंती निष्ठाओं का पुलिंदा है। लेकिन किशना इस पोटली को खोलकर, धो-पोंछ और सुखाकर खुली रोशनी में देख-परखकर काम की चीजें ही रखना चाहता है। गणित ज्ञान की नीरा की तुलना में किशना का चरित्र देखा जाना चाहिए।

'मेरे लिए नहीं' और 'मैं तो जन्मा ही' एक ही जॉनर की दो रचनाएँ हैं। हिंदी की प्रेम कहानियों की श्रेणी में रखने लायक। लगता है कथाकार संकेत करना चाहती है कि अस्थायी साहचर्य स्थायी उष्मा नहीं दे सकता। लेखिका के जिस दर्शन-चिंतन को कहानी में गूँथने के लिए जाना जाता, उसको किसी और जगत के लिए बचाकर रखा है। 'सदियों से' कहानी अपनी भाषा और चुस्त संवादों के लिए पढ़ी जानी चाहिए। जैसे 'समय के अहसास को समय के भीतरी भराव की तरह चिपकाए' अथवा 'दांपत्य खूब चतुर-चालाक है' और 'पछतावे टाइफाइड की तरह होते हैं।' उत्तर प्रदेश में टाइफाइड को मियादी बुखार कहा जाता था। स्पष्ट है कि कथाकार ने वहाँ की भाषा को आत्मसात् कर लिया है। 'खेल' आत्यंतिक अनुभव की बहुत महत्त्वपूर्ण कहानी है। खेल भावना के साथ भरपूर जीवन की जिजीविषा वाले खिलाड़ी का जब खेल खत्म होता है, तो पेवेलियन लाउंज, जो उसका घर-परिवार है, शोक में डूबता है। खिन्नता सन्नाटा बनकर पसर जाता है, लेकिन खिलाड़ी के खेल खत्म होने के बाद भी खेल भावना की अनुगूँज इस सन्नाटे में सुनाई देती रहती है। 'खेल' शीर्षक देकर राजी सेठ ने यह करिश्मा किया है। यह श्रेष्ठ कहानियों में शुमार करने लायक है।

'यह कहानी नहीं'—अनुभवों का घटाटोप हो और उनकी परछाइयाँ लगातार पीछा करें तो कैसे रचनाकार की कलम अटक जाती है। वृद्ध दंपती अपनी अगली पीढ़ियाँ खो चुके हैं। शोक हवा में हावी रहता है, वृद्धा की हर बात में रंज का तंज झलकता है, किंतु वृद्ध अंकल अपनी पुरुषोचित धीरता के साथ शोक को करुणा में रूपांतरित कर सकने की गरिमा दिखाते हैं। राजी सेठ ने इस कहानी के अंत में विश्व के क्लासिक साहित्य के दर्जे का नाटकीय बिंब प्रस्तुत किया है। अपने बच्चों की स्मृति में वृद्ध अंकल जिस स्कूल का उद्घाटन करते हैं उसकी मुख्य दीवार पर दो बड़े तैल चित्र टाँगे गए हैं, एक अंकल के दिवंगत पिता का और उसके बाद दो फीट जगह छोड़कर दिवंगत पुत्र का। अंकल दीवार की ओर मुँह किए एक हाथ पिता के चित्र पर, दूसरा पुत्र के चित्र पर रखे अपने आँसू छिपाते हुए ठहरे हैं, जैसे दीवार के कालखंड पर अतीत और भविष्य दोनों कीलित हैं और बीच की जगह वर्तमान पर वे पूरी तरह कीलित होकर समय की सूली पर प्रतीक्षा कर रहे हों। हिंदी कहानी में इतना काव्यात्मक, अर्थपूर्ण, प्रतीकात्मक बिंब और कहीं नहीं देखने को मिलता है। यह नाट्य-बिंब विश्व साहित्य के श्रेष्ठतम में शुमार किया जाना चाहिए, यह अपूर्व है और अप्रतिम। राजी सेठ की अपनी डिजायनर्स स्टडी है, जिसमें कहानियाँ अंतर अर्थों का अस्तर, छिपे हुए संकेतों की तुरपन से सजकर निकली हैं।

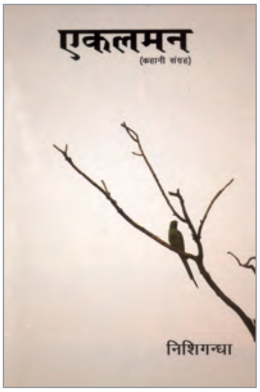

एकलमन

समीक्षक : **डॉ. हरिसिंह पाल**

लेखक : **निशिगंधा**

प्रकाशक : सभ्या प्रकाशन
नई दिल्ली

पृष्ठ : 128

मूल्य : रु. 300/-

इस 128 पृष्ठीय कहानी संग्रह की सभी 24 कहानियाँ मानव मन, विशेष रूप से नारी मन की सूक्ष्म अनुभूतियों की सफल अभिव्यक्ति की प्रेरक हैं। व्यक्ति समाज में, परिवार में, घर-गृहस्थी में रहते हुए भी कभी न कभी 'एकलमन' के साथ अपने जीवन का निरीक्षण, व पुनर्निरीक्षण, मूल्यांकन व पुनर्मूल्यांकन करता ही है। इसी मानव मन (मनोविज्ञान) का विवेचन और व्याख्यापरक मूल्यांकन संग्रह की कहानियों में परिलक्षित हुआ है।

कथाकारा निशिगंधा की कहानियों में स्त्री चेतना को जाग्रत और विकसित करने की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। इन कहानियों का फलक व्यापक है। इन कहानियों की नारी घर की चाहरदीवारी में सिमटी न रहकर समाज के विभिन्न संदर्भों से जोड़ते हुए यथार्थ रूप भी दर्शाती हैं। कथाकार ने अपने 'पुरोवाक' के माध्यम से इन कहानियों की पृष्ठभूमि और उसके निहितार्थों को भली भाँति स्पष्ट कर दिया है। हर किसी की तन्हाई दूर हो और जीवन में बहार आए। ऐसी मनोकांक्षा कथाकारा की रही है।

'एक अकेली' की नायिका भीड़ में भी अपने आपको एकाकी पाती है। 'सम्राज्ञी' की अनामिका परिस्थितियाँ 'आखिर कब तक...?' की संध्या, 'बदलाव' की सीमा, 'डिजर्टेड' की काम्या, 'अंजली' की अंजली, 'वो सोलह शृंगार' की शब्दा, 'दि सिंकिंग शिप' की प्रिया, 'एक अकेला' की जूलिया, 'कुल्हाड़ी' की सुनयना, 'आश्रम' की निधि, 'अलार्म क्लॉक' की नीलिमा, 'शोनिज का शोर' की वह, 'वह' की वह 'आह' की मीता, 'एकलमन' की तृषा, 'इस ब्याही से...?' की अंजलिका, 'बोझ' की मैं, 'थ्री रमेड्स' की मीनल, 'खामोश सी खामोशी...?' की अनाम नायिका, सभी अपनी-अपनी नई कहानियाँ लेकर पाठक के समक्ष उपस्थित होती हैं और जीवन का आदिकालीन फलसफा कहती हैं। "बदलते परिवेश व माहौल के साथ इंसानी सोच भी बदलती है और जीवनपर्यंत अनेक समझौते भी करने पड़ते हैं।" (पृष्ठ 127) यद्यपि ये कहानियाँ नारी प्रधान ही प्रतीत होती हैं, फिर भी इनमें समूचा समकालीन समाज ही समाया हुआ है। नारी भी इसी समाज की महत्त्वपूर्ण इकाई है और समाज से ही उत्स लेकर विषम परिस्थितियों से संघर्ष भी करती है। इन कहानियों में उच्च और मध्य वर्ग की नारियों की व्यथा-कथा ही अधिक प्रतिबिंबित हुई है, इसी दृष्टि से इन कहानियों का मूल्यांकन करना श्रेयस्कर है।

फिर भी 'एकलमन' की कहानियाँ नारी समाज के मनोविश्लेषणात्मक धरातल का स्पर्श करती हैं। नारी की सबलता, नारी का उच्च आदर्श, नारी की जिजीविषा और नारी मन की कोमलता का चित्रण इन कहानियों का उज्ज्वल पक्ष है। इसे और भी उभारा जाना अपेक्षित था।

निशिगंधा ने अपनी कहानियों के माध्यम से नारी की परिवर्तित सामाजिक स्थिति का गहन सूक्ष्म विश्लेषण किया है। उनके द्वारा चित्रित नारी भले ही उच्च वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है किंतु मानवीय चिंतन से परिपूर्ण है। और संपूर्ण व्यक्तित्व की स्वामिनी है जो अपने सुदृढ़ कदमों से मानव समाज को एक नया रूप देने में सक्षम है।

मानवीय संवेदनाओं से परिपूर्ण नारी मनोभावों की सफल अभिव्यक्ति के लिए कथाकारा निशिगंधा को हार्दिक बधाई और साधुवाद।

घोषणा-फार्म - 4 (नियम 8 देखिए)

पुस्तक संस्कृति (त्रैमासिक)

1.	**प्रकाशन स्थल**	:	नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, वसंत कुंज, फेज-II, नई दिल्ली-110070
2.	**प्रकाशन अवधि**	:	त्रैमासिक
3.	**मुद्रक का नाम**	:	सतीश कुमार, द्वारा राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत
	नागरिकता	:	भारतीय
	पता	:	राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, वसंत कुंज, फेज-II, नई दिल्ली-110070
4.	**प्रकाशक का नाम**	:	राष्ट्रीय पुस्तक न्यास
	नागरिकता	:	भारतीय
	पता	:	नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, वसंत कुंज, फेज-II, नई दिल्ली-110070
5.	**संपादक का नाम**	:	पंकज चतुर्वेदी
	नागरिकता	:	भारतीय
	पता	:	नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, वसंत कुंज, फेज-II, नई दिल्ली-110070
6.	**पत्रिका का स्वामित्व**	:	राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत

पुस्तकें मिलीं

नक्सलवाद : झारखंड के झरोखे से

रामचंद्र राम

नक्सल समस्या से जूझने की योजनाओं में कई वर्षों तक शामिल रहे एक वरिष्ठ आई.पी.एस. अधिकारी की यह पुस्तक नक्सलवाद के सामाजिक, व्यावहारिक और ऐतिहासिक कारणों के साथ-साथ पुलिस और प्रशासन की ऐसी कमियों को भी उजागर करती है जो समग्र रूप से इस समस्या के मूल कारकों में से हैं। पुस्तक में आँकड़े और अनुभव साथ-साथ चलते हैं।

इंडिका इन्फोमीडिया, जनकपुरी, नई दिल्ली

पृ.400; रु. 300.00

इतिहास के कुछ अनजाने पन्ने

बिमल मित्र

अनुवाद : **शकुंतला बसु, नीलांजना सेन**

इस पुस्तक में बाँग्ला के प्रसिद्ध लेखक के दो लघु उपन्यास हैं– 'इतिहास के कुछ अनजाने पन्ने' और 'प्रेम और राजनीति'। पहली रचना में एक लड़की को लेकर तारक और अलिकेश में तनातनी हो जाती है और यह टकराव इस स्तर तक पहुँच जाता है कि उनका देशप्रेम, अलौकिक त्याग, सब कुछ झूठा साबित होता है। दूसरी रचना ब्रितानी राज द्वारा भारत के संसाधनों की लूट के इतिहास को उजागर करती है।

प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली

पृ.240; रु. 350.00

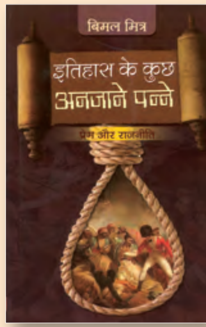

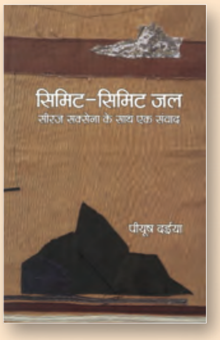

सिमिट-सिमिट जल : सीरज सक्सेना के साथ एक संवाद

पीयूष दहिया

चर्चित कलाकार सीरज सक्सेना के जीवन और कला को समझने के लिए पीयूष दहिया के साथ हुई लंबी बातचीत की सहज प्रस्तुति।

वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर

पृ.152; रु. 260.00

क्योंकि मैं इक लड़की हूँ

डॉ. अमृत कौर 'बिंदुसार'

इस पुस्तक में कुल 86 कविताएँ हैं जो कि एक लड़की के विभिन्न पहलुओं– उसके बहन, माँ, बेटी या पत्नी के रूप में या फिर उसके भावों, याद, दुःख, चिंता, जिद आदि को उभारती हैं।

वर्चुअस पब्लिकेशंस, नोएडा

पृ.104; रु. 155.00

मुर्दे इतिहास नहीं लिखते

अलका अग्रवाल सिग्तिया

नौ कहानियों का संकलन जिसकी प्रत्येक रचना जीवन के संघर्षों, बिखराव और जुड़ाव की अनकथ दास्ताँ कहती चलती है। कहानियों में आम इंसान के जीवन को इस सहजता से पिरोया गया है कि हर कहानी पाठक को अपनी कहानी का अहसास करवाती है।

यूनीस्टार बुक्स प्रा.लि., मोहाली, चंडीगढ़

पृ.160; रु. 295.00

लाड़ी का खजाना

अमित कुमार लाड़ी

एक पत्रकार के मन में देश, समाज, परिवेश, धर्म, राजनीति, ब्यापार जैसे समसामयिक विषयों पर कई विचार आते हैं। ऐसे ही उन्मुक्त विचारों को इस पुस्तक में संकलित किया गया है। लघु टिप्पणियों वाला यह प्रयोग अनूठा है।

ऑलराउंड पब्लिकेशंस, फरीदकोट (पंजाब)

पृ.94; रु. 300.00

सदियों पहले मोअन जो दड़ो में

रश्मि रमाणी

सिंधी और हिंदी की प्रख्यात लेखिका की 81 कविताएँ। सभी बहुत कम शब्दों में और सटीक भाव के साथ मन में गहरे तक उतरती हैं।

पार्वती प्रकाशन, द्वारिकापुरी, इंदौर

पृ.136; रु. 200.00

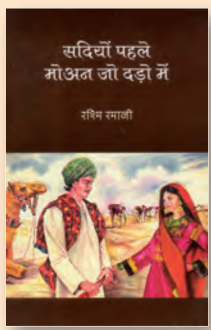

आपातनामा

मनोहर पुरी

'आपातकाल' उस काली रात की कहानी है जिसने 19 महीने तक प्रजातंत्र के सूर्य का उदय नहीं होने दिया। लेखक स्वयं आपातकाल के भुक्तभोगी रहे हैं और कहने को यह उपन्यास है, हकीकत में यह बहुत-सी सत्य घटनाओं का विवरण ही है।

ज्ञान गंगा, चावड़ी बाजार, नई दिल्ली

पृ.180; रु. 250.00

खामोशियाँ बोलती हैं

डॉ. किरण वालिया

जब शब्द हावी हो जाते हैं तो शेष सब मौन हो जाता है। ऐसी ही अनुभूतियों की साक्षी कविताओं के संकलन की रचनाएँ बताती हैं कि पीड़ा बेहतर इंसान का सृजन करती है।

सभ्या प्रकाशन, नई दिल्ली

पृ.92; रु. 210.00

ख़्वाब के गाँव में

जावेद अख़्तर

जावेद अख़्तर जिंदगी की आपाधापी, अच्छे-बुरे, सुख-दुःख, खुशी और गम को फिल्म के दृश्य की तरह दर्शक के नजरिये से देखते हैं। इस पुस्तक में उनकी ही कही-अनकही और लिखी बातों को सँजोया गया है।

मंजुल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली

पृ.70; रु. 199.00

बात निकलेगी तो....

डॉ. रश्मि खुराना

लगभग 37 साल तक आकाशवाणी में सेवा करती रहीं डॉ. खुराना ने इस पुस्तक में अपनी कुछ ऐसी यादों को सँजोया है जो कि रेडियो की दुनिया के कई रहस्यों, किस्सों और अनुभवों का खुलासा करती हैं।

ग्रेटवे प्रिंटर्स एंड पब्लिशर्स, जालंधर

पृ.142; रु. 300.00

श्रद्धा का महासागर : श्री अमरनाथ

डॉ. जवाहर धीर

कश्मीर स्थित अमरनाथ के हिम शिवलिंग के दर्शन को बेहद पावन और यहाँ तक कि यात्रा को बहुत कठिन माना जाता है। यह पुस्तक यात्रा का सजीव वर्णन करती है, इसके साथ प्रस्तुत 100 चित्र पाठक को सहयात्री होने की अनुभूति प्रदान करते हैं।

पुस्तक संस्कार, जम्मू

पृ.96; रु. 100.00

भारत में सांप्रदायिक सद्भाव

डॉ. गीता यादव

सांप्रदायिकता, धार्मिकता, कट्टरपंथ, असल में क्या है, इससे देश और समाज को किस तरह हानि होती है और इससे कैसे जूझा जाए, ऐसे ही कई सवालों के जवाब इस पुस्तक में दिए गए हैं।

हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर

पृ.200; रु. 400.00

इतनी सी बात

कमलेश भारतीय

एक शिक्षक, पत्रकार, संपादक, वक्ता और लेखक यह जानता है कि लघुकथा महज शब्दों में लघु नहीं होती, बल्कि बहुत ही लघु घटनाओं की गंभीर पड़ताल व भावों से निर्मित होती है। ऐसी 100 कहानियों का संकलन।

शुभतारिका प्रकाशन, अंबाला

पृ.112; रु. 150.00

हैलो चीन!

अनिल आजाद पांडेय

यह पुस्तक चीन के इतिहास, संस्कृति, खान-पान, रीति-रिवाज, खेलकूद से लेकर परिवहन व्यवस्था तक का लेखा-जोखा प्रस्तुत करती है। इसकी खासियत है इसकी किस्सागोई शैली।

राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

पृ.216; रु. 199.00

पुस्तकों से दोस्ती के संदेश के साथ
25 वें नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेला का समापन

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के अब वार्षिक हो चले सबसे बड़े पुस्तकीय आयोजन, नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेले के 25वें संस्करण का 7 से 15

जनवरी, 2017 तक नई दिल्ली के प्रगति मैदान में सफलतापूर्वक आयोजन संपन्न हुआ। उद्घाटन मानव संसाधन विकास राज्य मंत्री, माननीय डॉ. महेंद्र नाथ पाण्डेय ने किया। इस नौ दिनी पुस्तक मेले में अनेकानेक संगोष्ठियाँ, विमर्श-चर्चाएँ, कार्यशालाएँ, लोकार्पण कार्यक्रम आदि आयोजित हुए। प्रख्यात ओड़िया लेखिका, पद्मश्री श्रीमती प्रतिभा राय उद्घाटन कार्यक्रम में मुख्य अतिथि थीं। पुस्तक मेले के सह-आयोजक भारतीय व्यापार संवर्धन संगठन की कार्यकारी निदेशक सुश्री शुप्रभा सिंह, मानव संसाधन विकास मंत्रालय की संयुक्त सचिव श्रीमती अर्पणा शर्मा की भी गरिमामयी उपस्थिति थी। न्यास-अध्यक्ष श्री बल्देव भाई शर्मा ने स्वागत-उद्बोधन तथा न्यास-निदेशक डॉ. रीता चौधरी ने धन्यवाद ज्ञापन किया।

इस बार मेले की थीम थी– 'मानुषी : महिलाओं द्वारा और उन पर लिखित पुस्तकों की प्रदर्शनी'। थीम मंच पर प्रत्येक दिन अनेक कार्यक्रम हुए। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के 60 साल होने पर एक विशेष प्रस्तुति

रखी गई थी। 'यह मात्र सिंहावलोकन नहीं' शीर्षक से एक प्रदर्शनी लगाई गई थी। इस प्रदर्शनी-कक्ष का उद्घाटन मानव संसाधन विकास मंत्री, माननीय श्री प्रकाश जावड़ेकर ने किया। उन्होंने न्यास द्वारा निर्मित एक विशेष कैलेंडर का भी अनावरण किया।

हर वर्ष की भाँति इस वर्ष भी बाल मंडप का निर्माण किया गया था। इसी तरह, विदेशी मंडप में विश्व भर से आए प्रतिभागी देशों के स्टॉल लगे थे। मेला परिसर में प्रतिदिन अनेक सांस्कृतिक कार्यक्रम भी हुए। राइट्स

टेबल का आयोजन तथा अध्यक्ष के साथ ब्रेकफास्ट पर सीईओ स्पीक जैसे नियमित आयोजन भी हुए।

सूरत में राष्ट्रीय पुस्तक उत्सव संपन्न

न्यास द्वारा राष्ट्रीय पुस्तक उत्सव का आयोजन सूरत (गुजरात) में 18 से 22 मार्च 2017 तक एमटीबी आर्ट्स कॉलेज के सभागार में किया गया। इसके उद्घाटन समारोह में डॉ. दक्षेश ठाकर, डॉ. रुपा मेहता, डॉ. केशुभाई देसाई और श्री यतीश पारेख उपस्थित रहे थे। इस पंचदिवसीय पुस्तकोत्सव में कवि संमेलन, चर्चा-गोष्ठी, साहित्य रचना गायन संगीत एवं नाटक के कार्यक्रम हुए जिसमें लगभग पचास साहित्यकार, शिक्षाविद् एवं कलाकारों ने सक्रिय भागीदारी की तथा विद्यार्थी एवं श्रोतागण की उपस्थिति रही। इस दौरान एनबीटी की पुस्तक प्रदर्शनी भी लगाई गई थी।

राँची पुस्तक मेला

4 से 10 मार्च, 2017 के दौरान झारखंड की राजधानी में राँची पुस्तक मेला का आयोजन किया गया। इस मेला में देशभर से आए प्रकाशकों, पुस्तक विक्रेताओं ने लगभग 60 स्टॉलों में पुस्तकों की प्रदर्शनी लगाई। राजधानी के

मोराबादी मैदान में आयोजित इस मेले के दौरान संगोष्ठी एवं कवि गोष्ठी का भी आयोजन किया गया। संगोष्ठी का विषय था– 'पुस्तक संस्कृति के विकास में पुस्तकालयों का महत्त्व'। न्यास से प्रकाशित, प्रकाश मनु कृत 'जो खुद कसौटी बन गए' का लोकार्पण किया गया। कार्यक्रम का समन्वय न्यास के हिंदी संपादकद्वय श्री दीपक गुप्ता एवं कमाल अहमद ने किया।

कटक, ओडिशा में साहित्यिक महोत्सव

कटक, ओडिशा में 23 से 25 मार्च, 2017 की अवधि में न्यास द्वारा तीन दिवसीय साहित्यिक महोत्सव का आयोजन किया गया। महोत्सव का उद्घाटन प्रख्यात लेखिका श्रीमती प्रतिभा राय ने किया। इस अवसर पर

न्यास की पाँच पुस्तकों का लोकार्पण किया गया। ओड़िया बाल साहित्य तथा ओड़िया गीतों पर दो संगोष्ठियों का आयोजन भी किया गया। कार्यक्रम का समन्वय न्यास में ओड़िया भाषा संपादक श्री प्रमोद ने किया। विदित हो कि देश के अनेक हिस्सों में राष्ट्रीय पुस्तक महोत्सव का आयोजन न्यास की यात्रा के 60 वर्ष पूरे होने के स्मरणस्वरूप किया गया।

एनबीटी द्वारा लंदन पुस्तक मेला में भारतीय डायस्पोरा लेखन पर चर्चा

हाल ही में सफलतापूर्वक समाप्त हुए लंदन पुस्तक मेला (14-16 मार्च, 2017) में राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा भारतीय पुस्तकों की सामूहिक प्रदर्शनी लगाने के अतिरिक्त यहाँ भारतीय डायस्पोरा लेखकों की गोष्ठी का आयोजन भी किया गया जिसमें यूनाईटेड किंगडम के भारतीय डायस्पोरा लेखकों की रचनाओं की भारत में प्रस्तुति विषय पर लेखकों ने अपने विचार साझा किए। कार्यक्रम की अध्यक्षता एनबीटी के अध्यक्ष, श्री बल्देव भाई शर्मा द्वारा की गई। इस चर्चा में यूके के विभिन्न भागों में रहने वाले 15 से अधिक लेखकों ने भाग लिया। कार्यक्रम में श्री शर्मा ने एनबीटी के पुस्तक प्रकाशन तथा पुस्तक प्रोन्नयन से संबंधित कार्यक्रमों तथा भारतीय डायस्पोरा लेखकों के साथ मिलकर कार्य करने के प्रयासों पर चर्चा की। इस अवसर पर मंत्री (समन्वय), भारतीय उच्चायोग, यूके, श्री ए. राजन ने यूके में भारतीय डायस्पोरा समुदाय की बनावट पर अपने विचार प्रस्तुत किए। मेले में एनबीटी के अध्यक्ष, श्री बल्देव भाई शर्मा के नेतृत्व में तीन सदस्यीय प्रतिनिधिमंडल ने भाग लिया जिसमें संपादक, श्री कुमार विक्रम तथा सहायक निदेशक (प्रदर्शनी), सुश्री कंचन वांचू शर्मा भी शामिल हैं।

ब्रह्मपुत्र साहित्यिक महोत्सव

28 से 30 जनवरी, 2017 की अवधि में असम की राजधानी गुवाहाटी के श्रीमंत्र शंकरदेव कलाक्षेत्र में असम सरकार के सहयोग से राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा एक तीन दिवसीय ब्रह्मपुत्र साहित्यिक महोत्सव का आयोजन किया गया।

इस महोत्सव में 22 भाषाओं के लगभग 200 लेखकों ने विचार संगोष्ठियों, पठन सत्रों, काव्य गोष्ठियों और वार्तालाप सत्रों आदि जैसे साहित्यिक कार्यक्रमों में भाग लिया। महोत्सव का उद्घाटन मानव संसाधन विकास मंत्री श्री प्रकाश जावड़ेकर ने किया। उद्घाटन सत्र में असम के मुख्यमंत्री श्री सर्वानंद सोनोवाल ने भी संबोधन किया। समापन समारोह में राज्य के राज्यपाल श्री बनवारीलाल पुरोहित ने अपने संबोधन किए।

बदलते समय में बदलता बाल साहित्य

पंजाब के फगवाड़ा में कमल नेहरू विमेंस कॉलेज और नेशनल बुक ट्रस्ट ने मिलकर एक गोष्ठी का आयोजन किया। इस आयोजन में कॉलेज की छात्राओं के साथ पंजाब के कॉलेज से जुड़े शिक्षक भी शामिल हुए। बदलते समय में बाल साहित्य की स्थिति और सरोकारों पर विस्तार से चर्चा की गई और वक्ताओं ने समय के साथ बदलते हुए बच्चों, उनकी बदली हुई रुचियों और उनके लिए उनकी आज की दुनिया से जुड़ी विषय-वस्तु पर गंभीरतापूर्वक विमर्श किया। विमर्श में शामिल थे— कमला नेहरू कॉलेज फॉर विमेन, फगवाड़ा की प्रधानाचार्या डॉ. किरण वालिया, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के संपादक श्री पंकज चतुर्वेदी, हिंदी और पंजाबी के जाने-माने बाल साहित्यकार दर्शन सिंह आशट, बाल पत्रिका 'नंदन' के श्री अनिल जायसवाल, आकाशवाणी की पूर्व निदेशक श्रीमती रश्मि खुराना, बाल साहित्यकार तथा प्रकाशक श्रीमती रेनू चौहान, साहित्यकार श्री कमलेश भारती, डॉ. प्रीत अरोड़ा, बलप्रीत, रूपिका भनोट और देवेन मेवाड़ी। कार्यक्रम के आरम्भ में पंकज चतुर्वेदी ने बाल साहित्य की जरूरत और बच्चों की बाल साहित्य में भागीदारी पर प्रकाश डाला। प्राचार्या डॉ. किरण वालिया जी ने कॉलेज की युवा छात्राओं से आह्वान किया कि अब उनका समय है और उनका ही दायित्त्व है कि वो बच्चों को साहित्य से जोड़ें और साहित्य को आगे बढ़ाने का दायित्त्व संभालें। सबकी अलग-अलग राय थी पर लब्बो लुआब यही कि बच्चों को पुस्तकों से जोड़ने के लिए पहले माता-पिता को पुस्तकों से जुड़ना पड़ेगा। आकाशवाणी जालंधर की पूर्व निदेशिका डॉ. रश्मि खुराना ने बच्चों से संवाद करने, उनके अस्तित्व को स्वीकार करने की जरूरत पर बल दिया। साहित्य अकादेमी पुरस्कार विजेता और बाल साहित्यकार दर्शन सिंह आशट ने पुरानी लोकप्रिय कथाओं को आज के बच्चों के मन के हिसाब से ढालने की जरूरत पर बल दिया। डॉ. कमलेश भारतीय, डॉ. प्रीत अरोड़ा तथा अन्य वक्ताओं के चिंतन के केंद्र में भी बालक और उनका साहित्य था। रेनू चौहान जो खुद बाल साहित्यकार और अब प्रकाशक भी हैं, ने बाल साहित्य और प्रकाशन पर प्रकाश डाला। नंदन पत्रिका से जुड़े बाल साहित्यकार अनिल जायसवाल ने बाल पत्रिका और उसकी समस्याओं के साथ निजी प्रयास से निकलने वाली पत्रिकाओं पर बात की। समारोह के अध्यक्ष प्रसिद्ध विज्ञान कथाकार और प्रकृति के कुशल चितेरे देवेन मेवाड़ी जी थे। उन्होंने अपने अनुभवों से बताया कि बाल मन को खुलने का मौका दो। उसे खिलने का मौका दो। उपस्थित छात्राओं ने भी सवाल पूछे और अपने विचार व्यक्त किए।

इस अवसर पर राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा प्रकाशित श्री विष्णु प्रभाकर तथा श्री अमर गोस्वामी द्वारा लिखित बाल कहानियों की दो पुस्तकों का विमोचन भी किया गया। इन पुस्तकों की समीक्षा डॉ. आशा शर्मा तथा श्रीमती सुमन लता ने की।

राष्ट्रीय पुस्तक महोत्सव कार्यक्रम

राष्ट्रीय पुस्तक महोत्सव के अंतर्गत **कुल्लू**, हिमाचल प्रदेश (**25-26 फरवरी**); **जालंधर**, पंजाब (**1-2 मार्च**); **श्रीगंगानगर**, राजस्थान (**4-5 मार्च**); **नई दिल्ली**, दिल्ली (**21 मार्च**); **जांजगीर**, छत्तीसगढ़ (**23-24 मार्च**) तथा **लखनऊ**, उत्तर प्रदेश (**29-30 मार्च**) में साहित्यिक कार्यक्रमों के आयोजन हुए। इसके अंतर्गत संगोष्ठी एवं कविता पाठ जैसे कार्यक्रम हुए। कार्यक्रमों का समन्वय न्यास में हिंदी भाषा संपादक ललित किशोर मंडोरा ने किया।

कहानी वाचन एवं लेखन कला

राष्ट्रीय पुस्तक महोत्सव के दौरान नई दिल्ली के प्रगति मैदान में 'कहानी वाचन एवं लेखन कला' विषय पर कार्यक्रम का आयोजन किया गया। इस अवसर पर केन्द्रीय विद्यालय, पीतमपुरा और सर्वोदय उच्चतम विद्यालय, आनंद विहार के लगभग 200 बच्चों एवं उनके शिक्षकों ने भागीदारी दी। गैर-सरकारी संगठन की कार्यकर्ता श्रीमती रीना शुक्ला भी अपने कुछ बच्चों के साथ मौजूद थीं।

यहीं पर कार्यक्रमों की शृंखला में डॉ. बबली वशिष्ठ की संस्था गायत्री साहित्य संस्थान की ओर से श्री चंद्रमणि ब्रह्मदत्त की संस्था नारायणी साहित्य अकादमी ने साहित्यिक आयोजन किए।

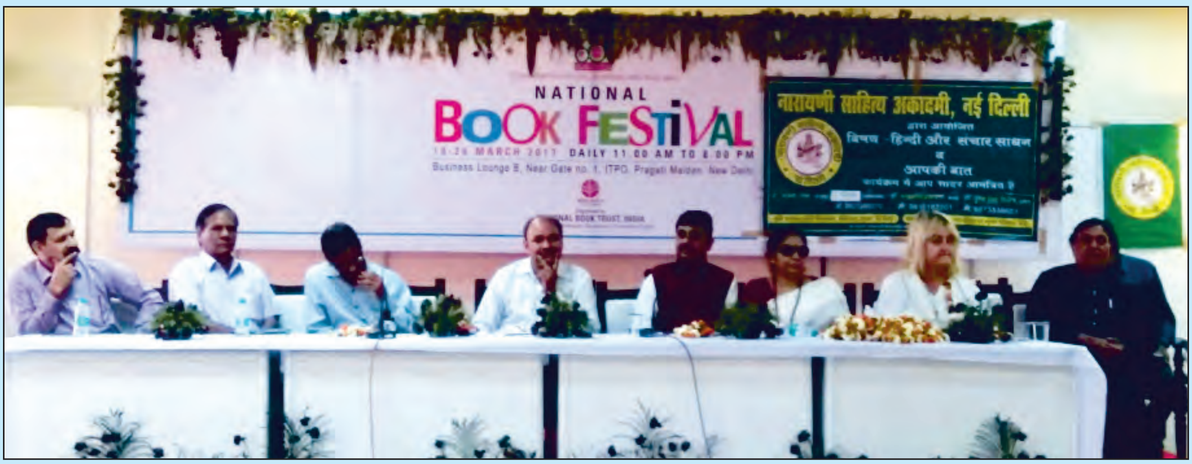

लेखकों के लिए

पुस्तक संस्कृति

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास की त्रैमासिक पत्रिका

पत्रिका का **जुलाई-सितंबर, 2017 अंक 'विज्ञान'** पर केंद्रित होगा। भारत के पुरातन वैज्ञानिक, आधुनिक वैज्ञानिक खोज, विज्ञान गल्प, पर्यावरणीय संकट, वैज्ञानिकों से साक्षात्कार, तकनीक पर आधारित आलेख भेजे जा सकते हैं।

1. सामग्री अधिकतम तीन हजार शब्दों तक हो
2. पहले से छपी सामग्री भेजने से बचें
3. रचना के साथ संदर्भ के चित्र आदि भी भेजें
4. लेखक का चित्र, पाँच पंक्ति में परिचय (संपूर्ण जीवनवृत्त नहीं) भेजें, जिसमें संप्रति, प्रकाशन, सम्मान आदि का विवरण हो। संपर्क के लिए पता, ई-मेल या फोन नंबर जो भी सार्वजनिक करना चाहें।

सामग्री डाक से या ई-मेल से भेज सकते हैं। ध्यान रहे कि रचना कृति, यूनिकोड या फिर शिवा मीडियम फॉण्ट में एम.एस. वर्ड या पेजमेकर में ही हो।

रचना 15 मई, 2017 तक यहाँ भेज सकते हैं :

संपादक (पुस्तक संस्कृति)

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, 5 नेहरू भवन, वसंत कुंज, संस्थानिक क्षेत्र फेज-2, नई दिल्ली-110070

ई-मेल : editorpustaksanskriti@gmail.com

दूरभाष : 011-26707758, 26707876

'पुस्तक संस्कृति' के वार्षिक सदस्य बनें

त्रैमासिक पत्रिका का **वार्षिक सदस्यता शुल्क 125/- रु.** है।

पत्रिका का सदस्यता शुल्क भेजने के लिए बैंक का विवरण निम्नांकित है :

CANARA BANK, Branch: Vasant Kunj,
New Delhi 110070.
A/C No.: **31591010003159**

इसके अलावा नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया के पक्ष में देय चेक, ड्राफ्ट या धनादेय भी भेजा जा सकता है।

शुल्क भेजने के पश्चात् कृपया फोन अथवा पत्र द्वारा सूचना अवश्य दें।

पुस्तक संस्कृति

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास की त्रैमासिक पत्रिका

के सदस्य बनें

सदस्यता प्रपत्र

नाम : ____________________

पता : ____________________

जिला : __________ शहर __________ राज्य __________ पिन कोड __________

फोन : __________ मोबाइल : __________ ई-मेल : __________

मैं राशि रु.125/- वार्षिक सदस्यता हेतु (बैंक ड्राफ्ट/नगद) __________ द्वारा भेज रहा/रही हूँ (संलग्न)। सदस्यता शुल्क बैंक ड्राफ्ट द्वारा नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया के पक्ष में देय, सदस्यता प्रपत्र के साथ निम्नलिखित पते पर भेजें :

संपादक
पुस्तक संस्कृति
राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, 5 नेहरू भवन, वसंत कुंज, संस्थानिक क्षेत्र, फेज-2,
नई दिल्ली-110070

ई-मेल : editorpustaksanskriti@gmail.com

दूरभाष : 011-26707721/26707843

ऑन लाइन शुल्क भेजने का विवरण इस प्रकार है :

For	National Book Trust, India
Bank	Canara Bank
Branch	Vasant Kunj, New Delhi-110070
A/c No.	3159101000299
IFSC CODE	CNRB0003159
MICR CODE	110015187

RNI NO. DELHIN / 2016 / 68219

मनोरंजन, ज्ञान और जिज्ञासा की अनूठी दुनिया!

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के कुछ नए प्रकाशन

तरुणों के लिए कहानियाँ

गिरिराजशरण अग्रवाल

13 ऐसी कहानियों का संकलन जिनमें बालपन से युवावस्था में जा रहे किशोरों की मनोवृत्ति, समस्याओं और निराकरणों पर विमर्श किया गया है।

पृ. 80; रु. 105.00

पंजाबी प्रवासियों की कहानियाँ

संपादक : जिंदर, बलदेव सिंह 'बद्दन';

अनुवाद : शशि सहगल

पीढ़ियों पहले पंजाब से निकलकर अमेरिका, कनाडा व अन्य देशों में बस गए पंजाबी लेखकों के दिल में भारत ही धड़कता रहा। मूल पंजाबी के इस संकलन में ऐसे ही 48 लेखकों की कहानियों को संकलित किया गया है।

पृ. 490; रु. 435.00

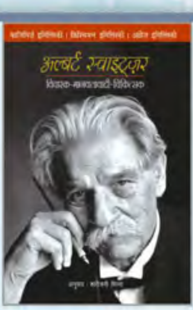

अल्बर्ट स्वाइट्ज़र : विचारक-मानवतावादी-चिकित्सक

काजिमिर्ज इमिलिंस्की, क्रिश्चियन इमिलिंस्की, आंद्रेज इमिलिंस्की;

***अनुवाद* : सरोजिनी सिन्हा**

19वीं और 20वीं सदी के महान वैज्ञानिक, चिंतक और 1952 में शांति के नोबेल पुरस्कार से सम्मानित अंतरराष्ट्रीय हस्ती का जीवन परिचय।

पृ. 175; रु. 245.00

दर्द और उसका प्रबंधन

सुगंध ए. कर्पुरकर;

अनुवाद : सतीश चंद्र सक्सेना

इंसान के शरीर में आए दिन होने वाले दर्द के मस्तिष्क और तंत्रिका तंत्र से जुड़े वैज्ञानिक तथ्यों को सहज भाषा में प्रस्तुत करती पुस्तक।

पृ. 72; रु. 110.00

जो खुद कसौटी बन गए

प्रकाश मनु

यह पुस्तक विवेकानंद, तिलक, गाँधी, राजर्षि टंडन आदि महान विभूतियों के जीवन की कुछ ऐसी घटनाओं का संकलन है—जो उन हस्तियों को महान बनाती हैं।

पृ. 206; रु. 210.00

विष्णु प्रभाकर की चुनिंदा बाल कहानियाँ

चित्र : पार्थ सेनगुप्ता

प्रख्यात लेखक विष्णु प्रभाकर द्वारा अपनी सृजन-यात्रा के अलग-अलग दशकों में लिखी गई बाल कहानियों का संकलन, जिन्हें रंगीन चित्रों के साथ प्रस्तुत किया गया है।

पृ. 68; रु. 90.00

अमर गोस्वामी की चुनिंदा बाल कहानियाँ

चित्र : शशी शेटये

बालमन के प्रख्यात चितेरे अमर गोस्वामी द्वारा अलग-अलग दशकों में लिखी गई 10 ऐसी बाल कहानियों का संकलन, जिन्हें उन्होंने विभिन्न काल में लिखा था।

पृ. 72; रु. 95.00

ढब्बूजी की धम्माल

आबिद सुरती

सुप्रसिद्ध पत्रिका 'धर्मयुग' को लोकप्रिय बनाने में उसके तीसरे-अंतिम पृष्ठ पर नियमित प्रकाशित ढब्बूजी की बड़ी भूमिका थी। उन्हीं चुनिंदा कार्टून पट्टियों को इस पुस्तक में संकलित किया गया है।

पृ. 28; रु. 65.00

पंचायत में महिलाएँ : चुनौतियाँ और संभावनाएँ

महीपाल

पुस्तक में पंचायत में कार्यरत महिलाओं की विभिन्न चुनौतियों का अध्ययन करने के साथ यह बताने का प्रयास किया गया है कि महिलाओं की इन संस्थाओं में भागीदारी प्रभावी बनाने की अनेक संभावनाएँ हैं।

पृ. 204; रु. 210.00

nbt.india
एकः सूते सकलम्

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत

मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार
नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070.
फोन : 011-26707761; **ई-मेल** : editorpustaksanskriti@gmail.com; **वेबसाइट** : www.nbtindia.gov.in